महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

वर्ष : ६० **अंक** : १८

दयानन्दाब्द: १९४

विक्रम संवत्: भाद्रपद शुक्ल २०७५

कलि संवत्: ५११९

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११९

सम्पादक

डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु.
त्रिवार्षिक-५८० रु.
आजीवन (१५ वर्ष)-२००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

सितम्बर द्वितीय २०१८

अनुक्रम

०१. राजनीति के महानायक का अवसान	सम्पादकीय	०४
०२. १३५ वाँ ऋषि बलिदान समारोह		०७
०३. मृत्यु सूक्त-१४	डॉ. धर्मवीर	०८
०४. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	११
०५. वेदगोष्ठी-२०१८		१५
०६. आर्यसमाज की दृष्टि में योगेश्वर...	कन्हैयालाल आर्य	१७
०७. क्या आर्यसमाज राजनीति में...	प्रकाशवीर शास्त्री	२१
०८. पाठकों की प्रतिक्रिया		२५
०९. आर्यसमाज का धौलपुर सत्याग्रह...	वेदारीलाल आर्य	२८
१०. वैदिक पुस्तकालय के नये संस्करण		३०
११. 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या'-२	रामनिवास गुणग्राहक	३१
१२. शङ्का समाधान- ३३	डॉ. वेदपाल	३८
१३. संस्था समाचार		३९
१४. पं. नारायण प्रसाद 'बेताब'-२	प्रभाकर	४०
१५. धौलपुर आर्य सत्याग्रह शताब्दी...	रामनिवास गुणग्राहक	४१

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com → Daily Pravachan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

राजनीति के महानायक का अवसान

स्वतंत्रता के बाद के राजनीतिक नेताओं में हिन्दू और आर्यसमाज के नेताओं की संख्या पर्याप्त थी, यद्यपि वे पृथक्-पृथक् राजनीतिक दलों में बँटे हुए थे, लेकिन बहुधा वे अपने धर्म और संस्कृति की विरोधी बातों का विरोध करते रहते थे। आर्यसमाज की ओर से कुछ प्रखर नेताओं में स्वामी रामेश्वरानन्द जी ने निर्भीकता की छाप संसद में छोड़ी। श्री प्रकाशवीर शास्त्री संसद् में अपने तथ्यपरक और ओजस्वी उद्बोधन के लिए सभी दलों में आदरपूर्वक जाने-माने जाते थे। इस कड़ी के अंतिम नेता के रूप में विगत दिनों में परलोकगत हुए भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी को स्मरण किया जाता है। श्री प्रकाशवीर शास्त्री के साथ अटल जी की मित्रता और संसद् में इस जोड़ी की वक्तृताएँ अत्यन्त प्रभावकारी होती थीं। प्रकाशवीर जी गुरुकुल ज्वालापुर के स्नातक होने के नाते महर्षि दयानन्द के सार्वभौम विचारों के अनुयायी थे और श्री अटल बिहारी वाजपेयी राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से उत्पन्न प्रखर राष्ट्रवादी। जहाँ प्रकाशवीर शास्त्री अल्पायु में दिवंगत हुए वहीं अटल जी ने सुदीर्घ जीवन जिया और उनके राजनीतिक परिश्रम का प्रतिफल भी उन्हें प्राप्त हुआ। राजनीति को उन्होंने चक्र की तरह घुमा दिया और उस पर केन्द्रीय एकाधिकार समाप्त कर उसे समावेशी बना दिया।

विगत दिनों ऐसे श्री अटल बिहारी वाजपेयी का देहावसान निश्चय ही समावेशी राजनीति के महानायक का अवसान था। राष्ट्रीय राजनीति में सर्वाधिक बार विपक्षी दल के नेता के रूप में श्री वाजपेयी जी का योगदान अप्रतिम रहा है। वे भले ही आर्यसमाज में दीक्षित न हुए हों, लेकिन उन्होंने आर्यकुमार सभा में सक्रिय भूमिका निभाते हुए सत्यार्थ-प्रकाश का अध्ययन अवश्य किया था। वे इसे स्वीकारते थे। उन्होंने आर्यसमाज से अपने सम्बन्धों के विषय में लिखा था कि ग्वालियर में आर्य कुमार सभा से उन्होंने अपना प्रारम्भिक सामाजिक और धार्मिक जीवन प्रारम्भ किया। उन्होंने अपने लेख '**अपनी बात**' में लिखा है कि ''**मेरे पिता श्री कृष्ण बिहारी वाजपेयी मेरी अंगुली पकड़ कर मुझे आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में ले जाते थे। उपदेशकों के सस्वर भजन मुझे अच्छे लगते थे। आर्य विद्वानों के उपदेश मुझे प्रभावित करने लगे। भजनों व उपदेशों के साथ-साथ स्वतन्त्रता संग्राम की बातें भी सुनने को मिलती थीं।**'' आर्य समाज के वैदिक और राष्ट्रीय विचारों का प्रभाव अटल जी पर बाल्यकाल में ही पड़ गया था । उन्होंने कानपुर के दयानन्द ऐंग्लो वैदिक (डीएवी) कॉलेज से एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। यहीं उनका महर्षि दयानन्द, **आर्यसमाज** और **सत्यार्थ-प्रकाश** से और भी गहरा सम्बन्ध स्थापित हुआ। जिसका उल्लेख उनके एक पत्र में मिलता है-

"I came in contact with the RSS in 1939 through Arya Kumar Sabha, a youth branch of Aryasamaj, in Gwalior-then a princely state which was not part of any province. I came from a strong 'Sanatani' family. But I used to be at the weekly 'satsang' of Arya Kumar Sabha. Once Shri Bhoodev Shastri who was a senior worker of **Aryakumar Sabha**, and a great thinker and an expert organiser, asked us : "What do you do in the evenings?" "Nothing", we said, because the Arya Kumar Sabha used to meet in the morning on every Sunday. Then he recommended us to go to the shakha. Thus I started going to the Shakha in Gwalior.

महात्मा रामचन्द्र वीर की पुस्तक **विजय पताका** से उनके जीवन में भारी परिवर्तन आया और उसके बाद राजनीतिज्ञ एवं विचारक डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी एवं पं. दीनदयाल उपायाध्य से उन्होंने राजनीतिक चिन्तन को ग्रहण किया। इसका प्रभाव उनके सांस्कृतिक, राजनीतिक और

सामाजिक जीवन पर स्पष्टत: परिलक्षित होता है। सार्वजनिक जीवन में उन्होंने कविताओं और गीतों के माध्यम से भारत की राष्ट्रीय अस्मिता और उसके गौरव का उद्घोष किया। वे धीर-गम्भीर होते हुए भी सहज और सरल भाषा में अपने विचारों को प्रकट करने के लिए पहचाने जाते थे। गैर कांग्रेसी होते हुए भी उन्हें अपने दल से इतर अन्यान्य दलों का व्यक्तिगत समर्थन मिलता था। राजनीतिक जगत् में 50 साल से अधिक नेतृत्व करने वाले अटल जी ने भारतीय राजनीति की एक दिशा अवश्य निश्चित की और पहली बार अछूत समझी जाने वाली अपनी भारतीय जनता पार्टी को विभिन्न दलों का समर्थन लेकर केन्द्र की सरकार बनाने का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया। विभिन्न दलों में तालमेल बैठाकर एक राष्ट्रीय सहमति की नीति को स्वीकार किया और गैर कांग्रेसी सरकार को पहली बार पूर्णकाल तक चलाने का उन्होंने मापदण्ड भी स्थापित किया।

अटल जी का व्यक्तित्व सर्वप्रिय और बहुआयामी रहा। वे केवल कवि, चिन्तक ही नहीं अपितु प्रखर सम्पादक और लेखक भी थे। पाञ्चजन्य, राष्ट्रधर्म, दैनिक स्वदेश और वीर अर्जुन जैसे पत्र-पत्रिकाओं में उनके ओजस्वी सम्पादकीय और राजनीतिक, सामाजिक विचारपूर्ण लेखों की झांकी मिलती है। शब्दों के वे ऐसे शिल्पी थे कि अपनी वक्तृत्व शैली के आधार पर उन्होंने भारतीय जनमानस में उद्भट नेता और ओजस्वी वक्ता के रूप में स्वयं को स्थापित किया। उनके भाषणों को सुनने के लिए दलों की सीमाओं को लांघ कर दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह किलोमीटर दूर जाकर भी जनता सुनने को लालायित होती थी। उनके एक-एक वाक्य पर विराट् जनसमुदाय की करतल ध्वनि उसे और भी ओज प्रदान करती थी। एक शक्तिशाली राष्ट्र की कल्पना करने वाले उन्होंने परमाणु विस्फोट की विश्व चुनौतियों का सामना करते हुए विश्व समुदाय के किसी भी दबाव को नकार कर एक नहीं वरन् दो-दो परमाणु परीक्षण किए। इस अवसर पर उनका उद्बोधन निश्चय ही इतिहास का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज बनेगा। **''परमाणु परीक्षण संबन्धी हमारे निर्णय की एकमात्र कसौटी राष्ट्रीय सुरक्षा ही है। हमने किसी अन्तर्राष्ट्रीय करार का उल्लंघन नहीं किया।''** राष्ट्रीय नीति का यह उद्घोष परवर्ती सरकारों के लिए आदर्श के रूप में काम आया। उन्होंने राष्ट्रीय आकांक्षाओं के अनुरूप राष्ट्र को सर्वोपरि मानकर लोकतान्त्रिक मर्यादाओं का केवल निर्माण ही नहीं किया, अपितु निर्वहन भी किया।

असहमतियों के बीच सहमतियों का निर्माण उनकी विशिष्ट शैली की पहचान रहा। यद्यपि पंजाब में आर्यसमाज के हिन्दी सत्याग्रह का उन्होंने भले ही राजनीतिक कारणों से समर्थन न किया हो लेकिन राष्ट्रसंघ में हिन्दी का पहला उद्बोधन हिन्दी में उन्होंने ही दिया था और विश्वमंच पर हिन्दी को स्थापित करने में भी वे पीछे नहीं रहे। क्षेत्रीय दलों में उनकी स्वीकार्यता ही उन्हें अजातशत्रु बनाती है। गठबंधन सरकार का इतना विराट् उदाहरण भारतीय राजनीति में देखने को नहीं मिलता। वे पत्रकार, कवि, राजनेता और इन सबसे अधिक सर्वप्रिय व्यक्तित्व के धनी थे। भारतीय राष्ट्र की संकल्पना का उनका यह कथन सभी भारतीयों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनेगा-

''भारत जमीन का टुकड़ा नहीं है, जीता-जागता राष्ट्रपुरुष है। हिमालय इसका मस्तक है, गौरीशंकर शिखा है। कश्मीर किरीट है, पंजाब और बंगाल दो विशाल कंधे हैं। विंध्याचल कटि है, नर्मदा करधनी है। पूर्वी और पश्चिमी घाट दो विशाल जंघाएँ हैं। कन्याकुमारी उसके चरण हैं, सागर उसके चरण पखारता है। पावस के काले-काले मेघ इसके कुंतल केश हैं। चांद और सूरज इसकी आरती उतारते हैं। यह वंदन की भूमि है, यह अर्पण की भूमि है, अभिनंदन की भूमि है। यह तर्पण की भूमि है। .....इसका बिंदु-बिंदु गंगाजल है। हम जिएंगे तो इसके लिए और मरेंगे तो इसके लिए।''

निष्कर्षत: केवल देश के किसान, दलित, पिछड़े वर्गों का ही नहीं अपितु उन्होंने समस्त भारतीय जनमानस का सशक्त नेतृत्व किया और भारतीय राष्ट्रवाद की अति उत्तम व्याख्या प्रस्तुत करते हुए एक संवेदनशील राजनेता की भूमिका का निर्वाह किया। आपत्काल में विभिन्न दलों के बीच रहकर उन्होंने राष्ट्रीय राजनीति में तत्कालीन राजनीतिक पार्टी जनसंघ की आवश्यकता को लोकनायक

जयप्रकाश नारायण के समक्ष प्रासांगिक बना दिया और इसीलिए जनता पार्टी में जनसंघ का विलय हुआ और पहली बार केन्द्र में गैर कांग्रेसी सरकार बनी। लेकिन राजनीतिक प्रतिबद्धताओं और स्वार्थपरक महत्त्वाकांक्षाओं के मध्य जब पार्टी में विरोध के स्वर उठने लगे तो साहस के साथ अटल जी ने जनता पार्टी से पृथक् होकर भारतीय जनता पार्टी का गठन कर उसका नेतृत्व संभाला। परिणामस्वरूप आज भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, केन्द्र की सरकार और राज्यों में लगभग 20 राज्यों में सरकार के गठन की घोषणा जैसे अटल जी ने पहले ही कर दी थी कि **कमल खिलेगा**।

हिन्दू धर्म के सार्वभौमिक स्वरूप को वे स्वीकार करते थे। उन्होंने बिना लाग-लपेट के अपनी कविताओं में इसे स्वीकार भी किया- **'हिन्दू तन-मन, हिन्दू जीवन, रग-रग हिन्दू मेरा परिचय।'** इसका अभिप्राय यह नहीं था कि वे अन्य मत-सम्प्रदायों का सम्मान नहीं करते थे। लखनऊ में हजारों मुस्लिम परिवारों के साथ उनकी पारिवारिक मित्रता थी। यही कारण था कि वे लखनऊ से अनेक बार सांसद बनते रहे।

केवल ओजस्वी और प्रखर वक्ता के रूप में ही नहीं अपितु मतभेदों के बीच भी सभी राजनीतिक दलों के साथ उनका सामंजस्य अप्रतिम रहा। उनके प्रयोग के बाद ही भारतीय राजनीति में गठबंधन सरकारों का विशेष दौर प्रारम्भ हुआ। यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वर्तमान प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र भाई मोदी के राजनैतिक पथ-प्रदर्शक के रूप में अटल जी का ही योगदान है जिन्हें उन्होंने सर्वप्रथम गुजरात के मुख्यमन्त्री का पद संभलवाया था।

ऐसे सदी के राजनीतिज्ञ नायक, अजातशत्रु, भारतीय राजनीति के सांस्कृतिक उन्नायक, प्रेरणा के स्रोत और आर्यसमाज की वैदिक विचारधारा से उत्पन्न अटल जी को परोपकारी परिवार की ओर से भावभीनी श्रद्धांजलि। अनेक महापुरुषों की भाँति वे भी हमारे स्मरणीय हैं-

नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पथिकृद्भ्यः।।

- दिनेश

एक आहुति
अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गौशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की निःशुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

- मन्त्री

परोपकारिणी सभा, अजमेर के तत्त्वावधान में
१३५ वाँ ऋषि बलिदान समारोह
दिनांक १६, १७, १८ नवम्बर २०१८, शुक्र, शनि, रविवार

महापुरुषों का यज्ञमय जीवन हमको प्रत्येक कदम पर प्रेरणा व मार्गदर्शन देता रहता है, जिस कारण हम उनके ऋणी हो जाते हैं। इस ऋण से मुक्त होने का एक ही उपाय है- महापुरुषों की विचारधारा का यथासामर्थ्य प्रचार-प्रसार। विराट व्यक्तित्त्व महर्षि दयानन्द की समग्र मानव जाति ऋणी है। इस ऋण को चुकाने का स्वर्ण-अवसर ऋषि के १३५वें बलिदान वर्ष के उपलक्ष्य में हमको प्राप्त हुआ है। इस अवसर पर परोपकारिणी सभा भव्य समारोह का आयोजन करने जा रही है।

ऋग्वेद पारायण यज्ञ- 'ऋग्वेद पारायण यज्ञ' की पूर्णाहुति बलिदान समारोह के अन्तिम दिन १८ नवम्बर को प्रातः १० बजे होगी। यज्ञ के ब्रह्मा आर्यजगत् के प्रतिष्ठित विद्वान् डॉ. विनय विद्यालंकार होंगे।

वेदगोष्ठी - प्रतिवर्ष की परम्परा के अनुसार इस वर्ष भी अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ दिल्ली एवं अनुसन्धान केन्द्र परोपकारिणी सभा के संयुक्त प्रयास से वेदगोष्ठी का आयोजन किया जायेगा। इस गोष्ठी में देश के विविध विद्वान् अपने शोधपूर्ण मौलिक विचार प्रस्तुत करेंगे। इस वर्ष वेदगोष्ठी का विचारणीय बिन्दु है- **षड्दर्शनों की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द।** जो विद्वान् गोष्ठी में शोधपत्र प्रेषित करना चाहते हैं, वे १० नवम्बर तक सभा के पते पर प्रेषित करवा देवें। १६, १७, १८ नवम्बर को ऋषि बलिदान समारोह के कार्यक्रमों के साथ-साथ वेदगोष्ठी भी चलती रहेगी। ऋषि-भक्त इसे सुनने का लाभ उठा सकते हैं।

चतुर्वेद कण्ठस्थीकरण वेद प्रतियोगिता- प्रतिवर्ष आयोजित की जाने वाली इस प्रतियोगिता में २१ वर्ष तक के छात्र भाग ले सकते हैं। किसी भी वेद को आद्योपान्त स्मरण करके इस प्रतियोगिता में भाग लिया जा सकता है। जो छात्र जिस वेद पर गत वर्षों में पारितोषिक ग्रहण कर चुके हैं, वे उस वेद से अतिरिक्त वेद स्मरण करके भाग ले सकते हैं। १६ नवम्बर को परीक्षा एवं १७ नवम्बर को पुरस्कार-वितरण का कार्यक्रम होगा। जो छात्र इस प्रतियोगिता में भाग लेना चाहते हैं, वे अपने-अपने गुरुकुलों, आश्रमों, संस्थानों से आचार्य द्वारा अधिकृत पत्रक पर २-छायाचित्र सहित अपना परिचय १० नवम्बर, २०१८ तक आचार्य महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, अजमेर के पते पर भेज दें।

सम्मान - प्रतिवर्ष विशिष्ट वैदिक विद्वान्, विदुषियों एवं कार्यकर्त्ताओं को इस समारोह में सम्मानित किया जाता है। इस वर्ष भी सम्मान -समारोह होगा। जिसमें अनेक विद्वान्-विदुषियों एवं कार्यकर्त्ताओं को सम्मानित किया जायेगा।

नवम्बर के आरम्भ में अजमेर में हल्की ठंड होने लगती हैं, ऋषि उद्यान खुले में होने से सर्दी का प्रभाव कुछ अधिक रहेगा। रात्रि में कम्बल ओढ़ने जैसी ठण्ड रहेगी। जो समूह में रहना चाहते हैं उनकी निवास व्यवस्था ऋषि उद्यान में होगी और जो अपने निवास की व्यवस्था होटल-धर्मशाला में करवाना चाहते हैं, कृपया वे सभा कार्यालय से पूर्व सम्पर्क कर अग्रिम राशि जमा करवा कर कमरा आरक्षित करवा लें। सभी से विशेष निवेदन है कि अपने आने की सूचना कम से कम एक सप्ताह पूर्व दे देवें, जिससे संख्या का अनुमान होकर तद्नुसार व्यवस्था की जा सके। सभी से निवेदन है कि १३५वें बलिदान समारोह में अपने परिवार व समाज के सभी कार्यकत्ताओं सहित पधार कर महर्षि को हार्दिक श्रद्धांजलि प्रदान करें, महर्षि दयानन्द के स्वप्न को साकार करने हेतु प्रेरणा उत्साह प्राप्त कर प्रचार-प्रसार को एक नई चेतना प्रदान करें।

ऋषि मेले में आमन्त्रित विद्वान् एवं विशिष्ट अतिथि- प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु-अबोहर, श्री सुरेश अग्रवाल-प्रधान सार्वदेशिक सभा, आचार्य विजयपाल-झज्जर, श्री सज्जनसिंह कोठारी-लोकायुक्त जयपुर, श्री विजयसिंह भाटी-जोधपुर, श्री इन्द्रजित् देव-यमुनानगर, आचार्य विद्यादेव, डॉ. प्रशस्यमित्र शास्त्री- रायबरेली, डॉ. रघुवीर वेदालंकार-दिल्ली, स्वामी ऋतस्पति-होशंगाबाद, डॉ. ब्रह्ममुनि-महाराष्ट्र, डॉ. वेदपाल-बड़ौत, आचार्या सूर्या देवी-शिवगंज, आचार्या धारणा 'याज्ञिकी', आचार्या प्रियम्वदा 'वेदभारती'-आर्ष कन्या गुरुकुल नजीबाबाद, श्री तपेन्द्र वेदालंकार-(रि. आई.ए.एस.) जयपुर, आचार्य विरजानन्द दैवकरणि-झज्जर, श्री कन्हैयालाल आर्य-गुरुग्राम, डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी'-दिल्ली, आचार्य ओम्प्रकाश-आबूपर्वत, मा. रामपाल आर्य-प्रधान आ.प्र.स. हरियाणा, श्री उमेद शर्मा-मन्त्री आ.प्र.स. हरियाणा, डॉ. महावीर मीमांसक-दिल्ली, श्री विजय शर्मा- भीलवाड़ा, श्री दीनदयाल गुप्त-कोलकाता, श्री शत्रुघ्न आर्य-राँची, डॉ. जगदेव-रोहतक, डॉ. रमेशचन्द्र 'जीवन'- चण्डीगढ़, डॉ. वीरेन्द्र अलंकार-चण्डीगढ़, डॉ. ज्ञानप्रकाश-गुरुकुल काँगड़ी, डॉ. रूपकिशोर-गुरुकुल काँगड़ी, डॉ. सोमदेव 'शतांशु'-गुरुकुल काँगड़ी, डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार-कुरुक्षेत्र, आचार्य ओमप्रकाश- माउण्ट आबू, पं. रामनिवास गुणग्राहक-श्रीगंगानगर, डॉ. विनय विद्यालंकार, डॉ. कृष्णपाल सिंह-जयपुर, श्री सत्यानन्द आर्य- दिल्ली, श्री जगदीश शर्मा-जयपुर, श्री शिवकुमार चौधरी-इन्दौर, श्री जयदेव आर्य-राजकोट, श्री ठा. विक्रमसिंह-दिल्ली, डॉ. उदयन- तेलंगाना, श्री प्रकाश आर्य-महू, श्री सत्यपाल पथिक, प. भूपेन्द्र सिंह आदि।

इस समारोह हेतु आपका आर्थिक सहयोग आयकर की धारा '८०-जी' के अन्तर्गत दिए गये प्रावधान के अनुरूप कर मुक्त होगा। विदेश में निवास कर रहे धर्मप्रेमी सज्जन स्वदेश में होने वाले इस समारोह हेतु मुक्त हस्त से दान देकर देश का गौरव बढ़ाएँ। सभा को भारतीय शासन द्वारा विदेशों से दानस्वरूप दी गई राशि को प्राप्त करने की छूट प्राप्त है। आपका सहयोग ही हमारा सम्बल है। शुभकामनाओं सहित।

गजानन्द आर्य	डॉ. सुरेन्द्र कुमार	ओम् मुनि
संरक्षक	कार्यकारी प्रधान	मन्त्री

प्रवचनमाला-२९

मृत्यु सूक्त-१४

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्या

परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां, यस्ते स्व इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि, मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्।।

इस वेद ज्ञान की चर्चा के प्रसंग में हम ऋग्वेद के दसवें मण्डल के १८ वें सूक्त पर विचार कर रहे हैं। इसमें मृत्यु के निवारण के बारे में चर्चा की गई है। मृत्यु पर हमने बहुत प्रकार से पीछे विचार किया और हमारे शास्त्रों में इसको अनेक स्थानों पर अनेक तरीके से लिखा गया है। पिछले प्रसंग में हमने इसको दो भागों में बाँट कर देखा था-यजुर्वेद के एक मन्त्र में '**वायुरनिलममृतमथेदम् भस्मान्तम् शरीरम्**' इसमें हमने बताया था कि एक आत्मा है, एक शरीर है। शरीर के साथ मनुष्य के क्या कर्त्तव्य हैं, वो '**भस्मान्तम्**' से प्रकट किए थे। **वायुरनिलममृतम्**-यह आत्मा की गतिशीलता, निरन्तरता, सत्यता को बताने वाले थे और जब मृत्यु के काल में खड़े हैं तो उस समय हमारे करने का, होने का क्या उपाय है, क्या परिस्थिति है, क्या दृश्य है, वह हमने अगले तीन शब्दों में देखा था- **ओ३म् क्रतो स्मर-क्लिबे स्मर-कृतं स्मर**।

हम वेद-मन्त्र का सामान्य अर्थ कर लेते हैं, लेकिन हम जानते हैं कि वेद का अर्थ त्रैकालिक है, सर्वविध अभिव्यक्ति इसमें निहित है, इसलिए **क्रतो स्मर, क्लिबे स्मर, कृतं स्मर** का अभिप्राय है कि जो उस समय की होने वाली परिस्थिति है, हो रही है, घटित है, घटित होनी चाहिए, उसके बारे में चर्चा है।

मैं जो कर्म कर रहा हूँ वे कर्म तो अपनी इच्छा से मैंने अवश्य किए हैं, लेकिन कर्म की एक अनिवार्य चीज है फल। मैं कुछ भी करता हूँ उसका परिणाम अवश्य होता है। देर से होता है, जल्दी होता है, थोड़ा होता है, अधिक होता है, एक बार में होता है, हजार बार में होता है, लेकिन संसार में कोई भी क्रिया कुछ न कुछ परिणाम अवश्य देगी। मैंने संसार में जो कुछ भी किया है, उसके साथ एक अनिवार्य चीज जुड़ जाएगी कि उसका फल अवश्य होगा। मैंने जो किया है उसको अपनी इच्छा से मैं अलग-अलग भागों में बाँटू, क्योंकि एक कर्म दूसरे से मेल नहीं खाता। एक को मैं अच्छा कहता हूँ तो दूसरा अपने आप बुरा हो जाता है, क्योंकि दोनों एक से नहीं हैं, दोनों को एक तरह से मैंने किया नहीं है तो दोनों का परिणाम भी एक जैसा नहीं हो सकता। जो कर्म मैंने किए हैं उन दोनों का परिणाम एक जैसा नहीं हो सकता, तो जो काम मैंने अच्छा समझ कर किया है और अच्छा समझा जाता है, उसका जो परिणाम सुख रूप होता है वह उसके विपरीत कर्म का नहीं हो सकता। क्योंकि इस कर्म का यह परिणाम है, यह निश्चित है। इस रास्ते पर चलकर मैं यहाँ पहुँचूंगा यह अनिवार्य है। यह नहीं हो सकता कि मैं चला तो किसी और रास्ते से था और पहुँच गया मैं कहीं और। ऐसा मेरे सोचने की भूल हो सकती है, होने की नहीं। मैंने सोचा तो था मुंबई जाना है, मैं कलकत्ता पहुँच गया। यह मेरे सोचने की भूल है। लेकिन मैं बैठा कलकत्ते की गाड़ी में था और कलकत्ते ही पहुँचा, इसमें भूल कैसे हो सकती है? जो भूल से पहुँचने की बात करता है वह सोचकर, विचार कर भूल की बात करता है, क्रिया के मूल की बात नहीं। क्रिया तो जो की है वही होगी। क्रिया के करने वाले का जो दर्शन है, विचार है, उसमें भूल है, क्रिया में और क्रिया के परिणाम में कोई भूल नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता कि क्रिया तो यह की और परिणाम और हो। इसलिए जो मनुष्य यह सोचते हैं कि जी, हमने तो ऐसा सोचा नहीं था, ऐसा हो गया, वे यह भूल जाते हैं कि परिणाम आपके सोचने से नहीं होता, आपके करने से होता है।

आपने गलत सोचकर भी अच्छा किया होता तो परिणाम उसका अच्छा होता और आपने अच्छा सोचकर भी यदि गलत किया है तो उसका परिणाम गलत होता है। यदि मैंने

अच्छा किया है तो अच्छा होगा, बुरा किया है तो स्वाभाविक रूप से बुरा होगा। इसलिए मैं सब कर्मों का एक जैसा फल निर्धारित नहीं कर सकता। मेरे कर्म अलग-अलग हैं, तो उनका फल भी अलग-अलग होगा। मेरे फल सुख के हैं तो कर्म अपने आप सुख के कहलायेंगे और मेरे कर्म से मुझे दु:ख मिल रहा है तो मेरे कर्म दु:ख का कारण कहलायेंगे। यह जो फल की-कर्म की अनिवार्यता है, यह नियमसिद्ध है, व्यवस्था सिद्ध है, इसलिए मैं इससे बच नहीं पाता, मैं इससे बच नहीं सकता। मैंने जैसा भी कर्म किया है, मुझे वैसा ही फल मिलेगा। यह फल अवश्य मिलेगा, इसमें विकल्प नहीं है। यह व्यवस्था मेरे हाथ में नहीं है, मैं इसको बदल नहीं सकता। कर्म का फल अनिवार्य है, कर्म पहले हैं और फल बाद में हैं, क्योंकि कर्म का परिणाम है फल।

आप पेड़ लगाते हो, उसके बाद उसमें फल आता है। ऐसा तो नहीं हो सकता कि फल पहले आ जाए और पेड़ बाद में लगे, क्योंकि फल पेड़ का परिणाम है। इसलिए जब मृत्यु की बात होती है तो कर्मों का परिणाम हमारे पास अवश्य होगा, जिन कामों को आपने सुख से जोड़ रखा है या जिन कामों को आपने दु:ख से जोड़ रखा है। उस अनिवार्य व्यवस्था के कारण आपको एक सुविधा मिली हुई है कि जिन कामों से आपको सुख मिलता है आप उन कामों को बार-बार कर सकते हो, अनेक बार कर सकते हो, उसका परिणाम भी उतनी ही बार मिलेगा, उतनी ही मात्रा में मिलेगा, उतना ही अधिक मिलेगा और विपरीत करेंगे तो उसका उतना ही विपरीत परिणाम होगा। कर्म और कर्मफल इसमें ऐसी स्वतन्त्रता है, जैसे आप बाजार में जा रहे हैं और बाजार में सामान की, वस्तुओं की कोई कमी नहीं है। बाजार में तो वस्तु बहुत हैं, असंख्य रखी हुई हैं, लेकिन मैं आवश्यकता की वस्तु का चुनाव करता हूँ, उसी वस्तु का मूल्य देता हूँ, मुझे वही वस्तु प्राप्त होती है। वैसे ही संसार की स्थिति है, संसार में भी मैं जब कभी उन वस्तुओं को चाहता हूँ तो उन वस्तुओं के लिए मैं इच्छा करता हूँ, कर्म करता हूँ, तो मुझे वैसा ही फल मिलता है। यह फल और क्रिया का जो अनिवार्य संबन्ध है, यह अनिवार्य संबन्ध मुझे किसी तरह से बचा नहीं सकता। इसलिए यह नहीं हो सकता कि मैंने कर्म कुछ किया हो, मुझे फल कुछ और मिले, मेरी इच्छा कुछ हो और मैं परिणाम कुछ और प्राप्त करूँ, ऐसा संभव नहीं है।

इस बात को समझने के लिए शास्त्र कहता है कि मैं कर्म करने में स्वतन्त्र हूँ, किन्तु फल पाने में स्वतन्त्र नहीं हूँ। मैंने परिणाम के लिए क्रिया की, लेकिन क्रिया के बाद होने वाला परिणाम मुझे भोगना ही है। मुझे वह वस्तु मिलनी है जिसका मैंने मूल्य दिया है, जिसके लिए मैंने प्रयत्न किया है, जो मैंने चाही है। इस दृष्टि से कर्म को यदि हम समझ लें तो हमें यह मन्त्र आसानी से समझ में आ जाएगा। सामाजिक जीवन में, वैदिक जीवन में कर्म और कर्मफल का सिद्धान्त ही सबसे महत्त्वपूर्ण है और इसी से जीवन का निर्धारण भी है। मेरा एक भी कर्म ऐसा नहीं होगा जो निष्फल जाता हो।

जीवन में मैं दिनभर काम करता हूँ, रातभर काम करता हूँ, दिन में सोचता हूँ, कभी शरीर से करता हूँ, कभी मन से करता हूँ तो इतने असंख्य कर्मों का फल मुझे कैसे मिले? यह व्यवस्था बड़ी जटिल है। लेकिन इतना अनिवार्य है कि उसका फल तो मिलेगा। यह बात कहने के लिए एक सूत्र बहुत अच्छा है-**ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम्...,** क्योंकि एक जन्म में सारे जन्मों के कर्मों का फल तो नहीं मिल सकता, क्योंकि मेरा एक जन्म पशु का हो सकता है, पशु में तो भोग योनि है, लेकिन एक जन्म में मैंने पशुता के काम अधिक किए मनुष्य रहते हुए भी। एक जन्म में किसी और तरह के काम किए जिसका फल कुछ और है, तो ऐसी स्थिति में दो विचित्र जन्मों को भगवान् जोड़ तो नहीं सकता। ऐसी स्थिति में जिस जन्म के संस्कार जिस जीवन के, जिस योनि के संस्कार अधिक हैं, मुझे उसका फल प्राप्त होता है, उसकी योनि प्राप्त होती है, उसका जन्म प्राप्त होता है। **ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम्...।** मेरी वासना मेरी मृत्यु के समय की परिस्थिति के अनुरूप उभर कर आती हैं और वह कहाँ की होती हैं? उसके लिए सूत्र बताया गया जाति, देश, काल, अर्थात् कभी मैं किसी जन्म में रहा हूँ, कभी किसी जन्म में रहा हूँ। कभी किसी देश में रहा हूँ। समय की भी भिन्नता रही, जाति की भी भिन्नता रही और स्थान की भी

भिन्नता रही, तो उस अलग-अलग स्थानों पर जो मेरे द्वारा किए गए कर्म हैं- वे उस जन्म की अनुकूलता के हिसाब से इकट्ठे हो जायेंगे। इस जन्म में भोगने के लिए जो संभव हैं वे इकट्ठे हो जायेंगे। तो यह दोनों तरह से-मनुष्य जीवन में उनका भोग केवल भोग योनि में मुझे जाना है तो किस योनि के अनुसार मेरे कर्म हैं, उसमें जाने का प्रबन्ध हो जाएगा। तो इतनी जो गहन चर्चा है, यह विषय की गहराई है, इसका मन्त्र के तीन शब्दों में व्याख्यान दिया है, वह है **ओ३म् क्रतो स्मर, क्लिबे स्मर, कृतं स्मर**। इसमें विचित्र है 'स्मर' तीनों के साथ है, अर्थात् मुझे तीनों का ही ध्यान रखना है, तीनों का ही स्मरण रखना है, तीनों की जानकारी रखनी है। **कृतं स्मर**-अर्थात् वह स्मृति में आना ही है, **क्लिबे स्मर**-सामर्थ्य के लिए स्मरण करना है, और उस व्यवस्थापक को स्मरण करना है अर्थात् जब मैं विवश होता हूँ, जब मैं कहीं से छूटना चाहता हूँ तो जिसने मुझे बन्धक बनाया है, उसी से मैं प्रार्थना करता हूँ। महानुभाव! मुझे यहाँ से मुक्त कर दो, छोड़ दो। यदि मुझे मुक्त होना है तो भी उसको स्मरण करना होगा, मुझे उससे कुछ प्राप्त करना है तो भी मुझे उसको स्मरण करना होगा।

शास्त्र कहता है कि जब मृत्यु की परिस्थिति मनुष्य के सामने होती है तो कई बार लोग कहते हैं, जी मुझे वह दिखाई दिया, यह दिखाई दिया, वह और कुछ नहीं है वह मृत्यु के समय की होने वाली परिस्थिति है। वह कैसी होती है उसका एक चित्र होता है जिसको शास्त्रकारों ने समझाया है कि आपको ऐसा-ऐसा अनुभव होता है। इसलिए कुछ लोग बता सकते हैं, बताते हैं कि मृत्यु के समय में ऐसा अनुभव हुआ। यह जो अनुभव है उसको यदि आप व्याख्या में डालेंगे, उसकी उचित व्याख्या करेंगे तो ये जो तीनों शब्द हैं, वे हमारी समझ में आयेंगे। यही मन्त्र का मूल प्रयोजन है-**इतरो देवयानात्** अर्थात् हमारा देवयान का मार्ग कौन-सा होगा और पितृयाण का मार्ग कौन सा होगा? मृत्यु के समय हम देवयान के द्वार पर खड़े हैं तो जन्म-मरण की आवृत्ति से हमें छुटकारा मिल जाएगा, हम हट जायेंगे। लेकिन यदि हम 'इतरो देवयानात्' पितृयाण के मार्ग पर खड़े हैं तो वापस हम जन्म-मरण के चक्र में आयेंगे। यह तीसरा लोक होता है। **जायस्व म्रियस्व**-पैदा हो जा, मर जा। तो ये इन तीन लोकों की जो परिस्थिति है, इसका इस समय चित्रण किया गया है। यह जो दर्शन है, दर्शन की जो गहन परिस्थिति है उसको ये थोड़े से शब्द अभिव्यक्त करते हैं और हम उस मनोविज्ञान की गहराई तक पहुँच सकते हैं, उसको पकड़ सकते हैं जो एक मनुष्य की मृत्यु के समय अनुभव में आती है। ये तीन शब्द हैं- **ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतं स्मर।**

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं। डॉ. रमेश मुनि जी चिकित्सक के रूप में इस चिकित्सालय का कुशलतापूर्वक कार्यभार सम्भाल रहे हैं। चिकित्सालय का समय प्रात: ९ से ११ बजे तक है। रविवार का अवकाश होता है।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

सिद्धान्त चर्चा- 'तड़प-झड़प' स्तम्भ ने जहाँ आर्यसमाज को श्री पंकजशाह सरीखे कई अथक समर्पित और कर्मठ मिशनरी व धर्मरक्षक दिये हैं, वहाँ इस स्तम्भ द्वारा ज्ञानपिपासु पाठकों को वैदिक सिद्धान्तों तथा आर्यसमाज के इतिहास की नई-नई और प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती रहती है। श्री धर्मेन्द्र 'जिज्ञासु' किन्हीं कारणों से निराश, उदास होकर निष्क्रिय हो चुके थे। गुरुकुल गौतमनगर में लेखक को सुनकर 'तड़प-झड़प' पढ़कर जी-जान से समाज-सेवा में जुटे हैं।

इसी स्तम्भ में यह पढ़कर कि बाइबिल में यह आता है ''He will not grow tired or weary.'' कि परमात्मा कभी थकता-टूटता नहीं। इस पर हमारी टिप्पणी कि सातवें दिन सृष्टि रचकर भगवान् ने विश्राम किया इसके विपरीत यह सात शब्दों का वाक्य तो बाइबिल में वेदवाणी की गूञ्ज है। हमें महर्षि के एक दुर्लभ लेख से यह अमूल्य प्रमाण मिलता है। एक पाठक ने पूछा है, ''आप यह मार्मिक प्रमाण ऋषि के किस ग्रन्थ से खोज लाये?''

आर्यो! पं. लेखराम बलिदान पर्व तक प्रतीक्षा करें। श्री अजय द्वारा ऋषि से जुड़ा एक अनूठा ग्रन्थ आ रहा है, उसमें यह जानकारी सबको मिल जावेगी?

ऋषि का जय जयकार- मैं तो एक दुबला ग्रामीण आर्य उपासक हूँ। मैं कोई तथाकथित योगी व महन्त नहीं। आर्यमात्र से विनती करता हूँ कि जी-जान से संसार को सुना दो, बता दो, मेरे लेखराम का यह डंका बजा दो कि बाइबिल आर्यसमाजी, वैदिकधर्मी बन गयी है। इसकी विस्तृत जानकारी तो मेरे एक नूतन ग्रन्थ से आप लोगों को मिलेगी। आज तो केवल एक उदाहरण दिया जाता है। बाइबिल के प्रामाणिक उर्दू अनुवाद में आता है, ''सो आसमान और ज़मीन और उनके कुल लश्कर का बनाना ख़त्म हुआ और ख़ुदा ने अपने काम को जिसे वह करता था सातवें दिन ख़त्म किया और अपने सारे काम से जिसे वह कर रहा था सातवें दिन फ़ारिग़ (मुक्त) हुआ।''[१] इसी प्रकाशन संस्थान द्वारा प्रकाशित अंग्रेज़ी के बाइबिल में यह छपा मिलता है ''And on the seventh day God finished His work which He had made, and rested on the seventh day from all His work which He had made.''[२]

पाठकवृन्द! एक ही संस्थान द्वारा प्रकाशित इन दो संस्करणों में इतना पाठ भेद क्यों? यह क्रान्ति पं. लेखराम जी से लेकर पं. शान्तिप्रकाश सरीखे महर्षि दयानन्द के सर्वस्व त्यागी बलिदानी शिष्यों की सतत साधना का फल है।

और लीजिये! अमरिका से प्रकाशित बाइबिल के नवीनतम संस्करण के शब्द भी सुनिये- पढ़िये, ''By the seventh day God had finished the work He had been doing, so on the seventh day He rested from all His work.''[३] इन शब्दों की इससे पहले उद्धृत वाक्यों से तुलना कीजिये और फिर ये शब्द पढ़िये ''He will not grow tired or weary.'' वह प्रभु न तो थकता है और न टूटता है। बाइबिल में इतना पाठभेद इस बात का प्रमाण है कि बाइबिल आर्यसमाजी बन रही है। ऋषि का जय-जयकार।

श्री इन्द्रजित् देव के प्रश्न- यमुनानगर के आर्य विद्वान् श्री इन्द्रजित् देव जी ने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया कि जब वीर भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव के शव फ़ीरोजपुर में अंग्रेज़ों ने मिट्टी का तेल डालकर फूँके तब एक सिख ज्ञानी तो बुलाया गया, आर्य विद्वान् के न बुलाने पर परिवारवालों ने तथा आर्यसमाज ने कुछ न कहा?

उन्हें बताया गया कि न परिवार वाले चुप बैठे और न आर्यसमाज ने मौन साधा। दोष तो बाद के आर्यसमाजियों का है जिन्होंने संस्थाओं के मायाजाल में फँसकर मिशन को वार डारा। कहीं किसी सभा संस्था ने तत्कालीन documents (दस्तावेज़) सुरक्षित किये क्या?

कुछ वर्ष पूर्व भगतसिंह की जीवनी लिखकर मैंने प्रमाण सुरक्षित किये, वे मेरे पास हैं। अब उनके फोटो भी छपवा दूँगा। श्री धर्मेन्द्र जिज्ञासु की पुस्तक में भी कुछ प्रमाण दिये गये हैं। संक्षेप से यहाँ दिये जाते हैं। श्री महाशय कृष्ण जी के साप्ताहिक 'प्रकाश' ने इस पर निर्भीक टिप्पणियाँ देकर सरकार को फटकारा। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मुखपत्र में शास्त्रार्थ महारथी महाशय चिरञ्जीलाल जी 'प्रेम' ने सभा के मुखपत्र 'आर्य मुसाफिर' में वेदोक्त रीति से दाहकर्म संस्कार न करवाने पर सरकार की कड़ी निन्दा की। ये अंक मैंने समय रहते सुरक्षित कर लिये थे।

जब वीरवर यतीन्द्र ने भूख हड़ताल करके बलिदान दिया तब सब शंकराचार्य, मठाधीश, मतवादी चुप रहे, तब आर्यसमाज के सर्वमान्य नेता महाशय कृष्ण जी ने लोकप्रिय आर्य पत्र 'प्रकाश' में आर्यसमाज की ओर से हुतात्मा को भावपूर्ण श्रद्धाञ्जलि भेंट करते हुये एक लम्बा लेख दिया, वह भी मेरे पास है। उसका हिन्दी अनुवाद 'वीर प्रताप' दैनिक में छपवा दिया था।

लगे हाथ सब सुन लो। भगतसिंह की तोतारटन लगाने वाले, readymade भाषणों व व्याख्यानों वाले आचार्य भी कान खोलकर सुन लें। उस समय भूख हड़ताल पर बैठे भगतसिंह आदि क्रान्तिवीरों के समर्थन में देशभक्तों ने लाहौर में जो विराट् सभा की थी उस ऐतिहासिक सभा की अध्यक्षता मृत्युञ्जय आर्य संन्यासी हमारे सत्गुरु स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने की और अगले ही रविवार समाज-मन्दिर जाते हुए बन्दी बनाकर सींखचों के पीछे भेज दिये गये। आगे की कहानी बहुत लम्बी है जिसे कभी फिर देंगे। क्या यह स्वर्णिम इतिहास आर्यसमाज में धर्मेन्द्र जी के अतिरिक्त कोई जानता है?

एक आपत्ति के लिये आभार प्रदर्शन- गंगानगर से दिया गया एक भाषण कहीं सुना गया है कि मेरे द्वारा उर्दू से अनूदित मुन्शी प्रेमचन्द जी की कहानी 'आपका चित्र' पर आपत्ति करते हुये मान्य भारतीय जी ने अनुवाद को दोषयुक्त घोषित कर दिया है। उनका धन्यवाद जो मेरे द्वारा अलभ्य कहानी की खोज पर दो शब्द न कहकर अनुवाद को पढ़कर उन्होंने दोष प्रचारित करके उपकार तो अपार कर दिया। उर्दू न जानते हुये भी वह उर्दू की कहानी के पारखी व समीक्षक बनने का सौभाग्य प्राप्त कर सके, इसके लिये उन्हें बधाई स्वीकार हो। वह इस कहानी का अपना अनुवाद समय नष्ट किये बिना शीघ्र छपवा दें। मैंने मूल भी उनके लिये छपवा दी है। इसके पश्चात् महाशय कृष्ण जी के बीस-तीस लेखों का अनुवाद करने की भी कृपा करें। कोई तो छपवा ही देगा।

कौन जानता है?- आर्यसमाज की सेवा करते हुये जब किसी पर कोई विपत्ति आती है तब आपदाग्रस्त व्यक्ति की सहायता व सहानुभूति के लिये कोर्ट तक भी कोई नहीं जाता। मेरे ज्येष्ठ भ्राता प्रि. यशपाल पर हिन्दू जाति का रक्षक होने के अपराध में तीन वर्ष तक बिना प्राथमिकी (F.I.R.) केस चलता रहा। प्रातः से सायंकाल तक कोर्ट में बैठना पड़ता था। तब आर्यसमाज के इतिहास के ऐसे सबसे लम्बे केस में एक भी व्यक्ति दिनभर उनके साथ बात करने को कोर्ट में नहीं होता था। जब दिल्ली में सत्यार्थप्रकाश पर अभियोग चल रहा था तब एक पेशी पर धर्मवीर जी, इन्द्रजित् जी तथा यह सेवक तीन ही व्यक्ति कोर्ट पहुँचे। मेरे कहने पर, प्रेरित करने पर भी कोई हमारे साथ चलने को तैयार न हुआ।

कोई दो वर्ष पूर्व तड़प-झड़प में एक वक्तव्य पर हिन्दू जाति व आर्यसमाज के हित में कुछ प्रतिक्रिया देने पर regd. notice देकर मुझे धमकाया गया। धमकाने वालों की इच्छा जेल पहुँचाने की थी। हम न डरे, न दबे और न झुके। श्रीयुत् डॉ. दिनेश जी सम्पादक परोपकारी ने दो-चार, दस-बीस व्यक्तियों को अवश्य यह जानकारी दी होगी। मैंने तो अपने परिवार को भी न बताया कि मुझे जेल जाना पड़ सकता है। मेरे शुभचिन्तकों में से केवल एक लक्ष्मण जी जिज्ञासु को यह सूचना दी गई। जिन्हें पता चला उन्होंने तब सहानुभूति का एक शब्द न कहा। अब इसे विजय माने तो आर्यसमाज की है और यदि फँसाया जाता तो जिज्ञासु फँसता।

एक आर्य देवी पर विपत्ति आई। सब तमाशा देखते रहे। उसी को वकील से...। कोई आगे सहयोग करने नहीं आया। भला हो उन दो-ढाई सज्जनों का जिन्होंने पराई आग में कूदकर माता आर्यसमाज की शान को चार चाँद

लगा दिये हैं।

सात खण्डों के इतिहास की बात- अभी इन्हीं दिनों किसी पत्र के सम्पादक जी या किसी खोजी ने डॉ. सत्यकेतु जी के इतिहास का एक उद्धरण प्रचारित किया है। Statesman स्टेट्समैन अंग्रेज़ी दैनिक में कभी आर्यसमाज द्वारा स्वदेशी वस्त्रों की प्रचार की प्रशंसा को ऐतिहासिक महत्त्व की घटना बताया। हमारी दृष्टि में इसका कुछ भी महत्त्व नहीं। इसे हम भावुक आर्यसमाजियों का अज्ञान व भ्रान्ति मानते हैं।

इस घटना (Statesman) से बहुत पहले सन् १९०३ में जालन्धर में महात्मा मुन्शीराम जी की कोठी में स्वदेशी के प्रचार का केन्द्र चलता रहा। वहाँ बड़ी-बड़ी सभायें होती थीं। तब उस कोठी की सभाओं में महात्मा मुन्शीराम और वीर किशनसिंह जी आदि के जोशीले व प्रेरक भाषण हुआ करते थे। ये समाचार मैंने तत्कालीन पत्रों में पढ़े थे। वे अंक मेरे पास अब भी कहीं सुरक्षित हैं। **आर्य संसार** में अभी-अभी छपा है। मैं भी पहले लिख चुका हूँ कि सन् १९०३ में कोलकाता में श्री गोविन्दराम जी (अनिल-अजय के पितामह) ने देश में स्वदेशी वस्त्रों की पहली दुकान खोली। यह देशभर में ऐसी पहली दुकान थी। बंगाल में स्वदेशी का बीज ऋषि दयानन्द के सपूत क्रान्तिकारी लाला गोविन्दराम जी ने ही बोया। तब कांग्रेस में स्वदेशी का शब्द किसने सुना था? लोग अपने मूर्खों को सिर पर चढ़ा देते हैं और हम अपने इतिहास पुरुष ला. गोविन्दराम का नाम लेने से सकुचाते घबराते हैं। यही तो इतिहास-प्रदूषण है। देखने में यह आ रहा है कि आर्यसमाज में गम्भीर सैद्धान्तिक शास्त्रीय चर्चा तथा प्रेरक इतिहास की ओट में वैदिक धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों पर खोजपूर्ण व्याख्यानों में नेताओं की और रेडीमेड लैक्चरों को देने वालों की कतई रुचि नहीं, इस कारण आर्यसमाज के गौरवपूर्ण इतिहास को कोई मुखरित नहीं करता।

एक घटना का अनावरण- बहुत पुरानी बात है कि एक आर्यसमाजी अध्यापक ने हरियाणा की प्रचार-यात्रा कर रहे एक संन्यासी के सामने एक समस्या रखी। एक लड़के की ओर संकेत करके कहा कि यह लड़का मेरे सम्पर्क में आकर सन्ध्या आदि सीख गया। कुछ आर्य सिद्धान्त भी जान गया है। मेरा यहाँ से स्थानान्तरण हो गया है। मुसलमान परिवार में जन्मा यह लड़का अब उदास है कि मैं कहाँ जाऊँ? मुझे अब कौन ज्ञान देगा? महाराज! इसे किसी संस्था में प्रवेश दिला दो।

दयालु महात्मा ने तत्काल आचार्य भगवानदेव जी के नाम एक पत्र दे दिया। बालक गुरुकुल झज्जर में प्रविष्ट कर लिया गया। आगे चलकर वह लड़का स्वामी सत्यपति के नाम से प्रसिद्ध हो गया। यह प्रसंग कई वर्ष पूर्व मुझे शास्त्री सुखदेव जी ने सुनाया और मैं भी कभी-कभी यह कहानी उन्हीं का नाम लेकर सुना देता हूँ, परन्तु क्या किसी से कहीं आपने यह प्रसंग सुना है?

स्वामी सत्यपति जी के शिष्य उन पर सदा कुछ न कुछ लिखते व बोलते रहते हैं, परन्तु यह प्रसंग जिसका सीधा सम्बन्ध हमारे लौहपुरुष विरक्त शिरोमणि पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी से है इसकी चर्चा आपने कभी सत्यपति जी के मुख से भी न सुनी होगी। उनका एक संक्षिप्त स्वलिखित जीवन-परिचय भी छपा था। यदि उसमें स्वामी जी ने यह घटना दी होती तो उनके चेले इसे उठा लेते। यदि मेरे द्वारा इसके अनावरण में किसी को सन्देह है तो मैं अपना नारको टेस्ट करवाने को हर घड़ी तैयार हूँ। पूज्य स्वामी श्री स्वतन्त्रानन्द जी और आर्यसमाज के सम्बन्ध में कोई मिथ्या मनगढ़न्त गप्प सुनाने की बजाय मैं मर जाना अच्छा समझता हूँ। आर्यसमाज पूज्यपाद महाबलिदानी स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के उपकारों को भूल जावे यह लज्जाजनक पाप नहीं तो क्या है? यह पतन व सर्वनाश का पथ है।

दाहकर्म संस्कार की श्रेष्ठता- हर्बर्ट स्पेन्सर के नाम की भारत के अंग्रेज़ी पठित लोगों में कभी बड़ी धूम थी। यूरोप में हर्बर्ट स्पेन्सर के शव का जब दाहकर्म किया गया उस समय पश्चिम के वैज्ञानिक जगत् में वेदोक्त अन्त्येष्टि संस्कार की श्रेष्ठता की धूम मच गई। आर्यसमाज के जागरुक विद्वानों ने इस घटना को उठाकर वैदिक संस्कारों की उत्तमता व श्रेष्ठता की सुशिक्षित लोगों के हृदयों पर छाप लगा दी। मास्टर आत्माराम जी ने कविवर गोल्डस्मिथ की कविता Dust to dust and ashes to ashes को इसके साथ जोड़कर यजुर्वेद की एतद्विषयक ऋचा के

मर्म को प्रचारित करके बड़ा यश पाया।

श्रद्धेय आत्माराम जी सरीखे दूरदर्शी विचारक, चिन्तक सहस्त्रों होंगे तो आर्य जाति संसार में सिर उठा सकेगी। अब बाबों को अपने चेले-चेलियों की संख्या बढ़ाने की चिन्ता है। पं. लेखराम जी, मेहता जैमिनी जी, स्वामी नित्यानन्द जी, मास्टर आत्माराम का नामोल्लेख कोई नहीं करता। फ़ारसी के एक कवि का कथन है यदि आप अपने हृदय को उत्साह से भरपूर हरा-भरा रखना चाहते है तो इनकी प्रेरक कहानियों का स्मरण करते कराते रहो।

एक आनन्ददायक समाचार- 'वेदप्रकाश' मासिक में यह समाचार पढ़कर गद्गद हो गया कि श्री अजय आर्य के संस्थान ने पूज्यपाद वेदविद् स्वामी वेदानन्द जी के बहुत से वेद-व्याख्या ग्रन्थों का प्रकाशन कर दिया है। पूज्य स्वामी जी के वेद व्याख्या ग्रन्थों का वेद के स्वाध्याय को लोकप्रिय बनाने में एक ऐतिहासिक योगदान है। अजय जी को चाहिये कि 'राष्ट्रवाद के वैदिक साधन' (डॉ. अम्बेडकर जी द्वारा प्रशंसित) और वैदिक स्वदेश भक्ति आदि को भी प्रकाशित कर दें। मुझे इनके प्रकाशन की पहले कोई सूचना दे देता तो मैं इनके प्राक्कथन रूप में नई-नई ठोस उल्लेखनीय जानकारी दे देता। पूज्य स्वामी जी की मुझ पर बहुत कृपा रही। यह सारा साहित्य अनूठा व पठनीय है।

टिप्पणी

१. द्रष्टव्य अनारकली लाहौर से फारन बाइबिल सोसायटी का प्रामाणिक उर्दू संस्करण पृष्ठ २१

२. द्रष्टव्य The Holy Bible page 6.

३. द्रष्टव्य Holy Bible संस्करण 2006 पृष्ठ 3.

आर्यों के लिये शुभ सूचना

'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर' छपने के लिये तैयार

कुछ समय पूर्व 'परोपकारी' में सूचना प्रकाशित हुई थी कि पं. लेखराम आर्य मुसाफ़िर के साहित्य 'कुल्लियाते आर्य मुसाफ़िर' को परोपकारिणी सभा प्रकाशित करने जा रही है। इस सूचना को पढ़कर आर्यजगत् में उत्साह का संचार होना स्वाभाविक ही था, जिसके परिणामस्वरूप इस ग्रन्थ को छापने के लिये कई साहित्यप्रेमियों ने सभा को सहयोग भी किया, परन्तु पंडित लेखराम जैसे नाम पर यह सहयोग पर्याप्त मालूम नहीं हुआ। पंडित लेखराम वह नाम है जिसके वैदिक-ज्ञान के सामने विरोधी काँपते थे। ऐसे सिद्धान्तमर्मज्ञ ने अपनी संचित ज्ञान-राशि को लेखबद्ध किया और इस लेखबद्ध ज्ञानराशि को यति शिरोमणि स्वामी श्रद्धानन्द जी ने एकत्रित किया और एक ग्रन्थ निर्मित हुआ, जिसका नाम था 'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर'। यह ग्रन्थ दो भागों में प्रकाशित हुआ। वर्त्तमान में यह ग्रन्थ दुर्लभ हो गया था। परोपकारिणी सभा ने इसे पुनः प्रकाशित करने का निर्णय लेकर पं. लेखराम को पुनर्जीवित कर दिया है। हमने लेखराम का गुणगान ही सुना है, उनके जीवन को ही पढ़ा है, पर वह इस उच्च पदवी को कैसे पा गये- इसकी सच्ची खबर तो उनके लिखे पन्ने ही बता सकते हैं। इन पन्नों को किताब रूप में छापने के लिये जैसा उत्साह, जैसी उमंग दिखनी चाहिये थी, उसमें अभी न्यूनता ही नज़र आती है।

अब यह ग्रन्थ छपने के लिये प्रेस में भेजा जा रहा है। अच्छे कार्यों का सदैव प्रोत्साहन होना चाहिये, इस दृष्टि से इस पुस्तक में **११०००/-रु.** का सहयोग करने वालों के नाम प्रकाशित किये जायेंगे। **एक लाख रु.** से अधिक का सहयोग करने वालों का चित्र सहित आभार व्यक्त किया जायेगा।

आइये, महर्षि दयानन्द के मिशन के लिये अपना जीवन देने वाले आर्यपथिक पं. लेखराम को केवल शब्दों से याद न करके उन्हें पुनर्जीवित करने में भरपूर उत्साह से सहयोग करें।

ओम्मुनि
मन्त्री, परोपकारिणी सभा

ओ३म्

परोपकारिणी सभा

दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर (राज.) पिन. ३०५००१ दूरभाष– ०१४५–२४६०१६४

वेदगोष्ठी–२०१८

मान्यवर सादर नमस्ते।

आशा करता हूँ कि आप स्वस्थ सानन्द होंगे। आपको सुविदित है कि सद्भावी विद्वानों के सहयोग से सदा की भांति इस वर्ष भी अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ, दिल्ली तथा अनुसंधान विभाग परोपकारिणी सभा, अजमेर के संयुक्त तत्त्वावधान में ऋषि मेले के अवसर पर वेदगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है। इस गोष्ठी में देश के अनेक भागों से पधारे प्रख्यात वैदिक विद्वान् निर्धारित विषयों पर अपने शोधपूर्ण विचार प्रस्तुत करते हैं। इनमें से चुने हुए शोध–पत्र परोपकारी व वेदपीठ की शोध–पत्रिका के माध्यम से प्रकाशित किये जाते हैं। जिससे जो लोग गोष्ठी में नहीं आ सकते वे भी लाभान्वित होते हैं। विद्वानों को भी इस विषय पर अधिक विचार करने का अवसर मिलता है। गत ३० वर्षों से गोष्ठी का आयोजन निरन्तर किया जा रहा है। अब तक निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया जा चुका है:–

१. ऋषि दयानन्द की वेदभाष्य शैली।	**१२ नवम्बर, १९८८**
२. वेद और कर्मकाण्डीय विनियोग।	**०५ नवम्बर, १९८९**
३. अथर्ववेद समस्या और समाधान।	**२७ नवम्बर, १९९०**
४. वेद और विदेशी विद्वान्।	**१६ नवम्बर, १९९१**
५. वैदिक आख्यानों का वास्तविक स्वरूप।	**०१ नवम्बर, १९९२**
६. वेदों के दार्शनिक विचार।	**२८ नवम्बर, १९९३**
७. सोम का वैदिक स्वरूप।	**१२ नवम्बर, १९९४**
८. पर्यावरण समस्या का वैदिक समाधान।	**०३ नवम्बर, १९९५**
९. वैदिक समाज व्यवस्था।	**०१ नवम्बर, १९९६**
१०. वेद और राष्ट्र।	**२४ अक्टूबर, १९९७**
११. वेद और विज्ञान।	**०९ अक्टूबर, १९९८**
१२. वेद और ज्योतिष।	**१० नवम्बर, १९९९**
१३. वेद और पदार्थ विज्ञान	**०३ नवम्बर, २०००**
१४. वेद और निरुक्त	**१८ नवम्बर २००१**
१५. वेद में इतिहास नहीं	**०१ नवम्बर २००२**
१६. वेद में कृषि व वनस्पति विज्ञान	**३१ अक्टूबर २००३**
१७. वेद में शिल्प	**१९ नवम्बर २००४**
१८. वेदों में अध्यात्म	**११ नवम्बर, २००५**
१९. वेदों में राजनीतिक चिन्तन	**२७ नवम्बर, २००६**
२०. वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है	**१६ नवम्बर, २००७**
२१. वैदिक समाज विज्ञान	**०५ नवम्बर, २००८**
२२. सत्यार्थप्रकाश का ७ वाँ समुल्लास व वेद	**२३ अक्टूबर, २००९**
२३. सत्यार्थप्रकाश का ८ वाँ समुल्लास व वेद	**१२ नवम्बर, २०१०**
२४. सत्यार्थप्रकाश का ९ वाँ समुल्लास व वेद	**०४ नवम्बर, २०११**
२५. महर्षिदयानन्दाभिमत मन्तव्यः वैदिक परिप्रेक्ष्य	**१६ नवम्बर, २०१२**
२६. वेद और सत्यार्थप्रकाश का १२वाँ समुल्लास	**८ नवम्बर, २०१३**
२७. भारतीय मत सम्प्रदाय और वेद	**३१ अक्टू. १,२ नव., २०१४**
२८. भारतीय मत सम्प्रदाय और वेद	**२०,२१,२२ नव., २०१५**
२९. दयानन्द दर्शन की वेदमूलकता	**४,५,६ नव., २०१६**
३०. वेदों में शिक्षा के सिद्धान्त	**२७,२८,२९ अक्टू., २०१७**

।। ओ३म्।।

वेद गोष्ठी २०१८ के लिए निर्धारित विषय

षड्दर्शनों की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द

उपशीर्षक :

०१. वेदों में दर्शन तत्त्व की विवेचना
०२. वेदों में षड्दर्शनों के मूलतत्त्व की मीमांसा
०३. महर्षि दयानन्द के चिन्तन में षड्दर्शनों की वेदमूलकता
०४. षड्दर्शनों में ईश्वर-विचार और उनकी वेदमूलकता
०५. षड्दर्शनों में प्रमाण-विचार और महर्षि दयानन्द
०६. षड्दर्शनों में जगत् का सम्प्रत्यय और उसकी वेदमूलकता
०७. षड्दर्शनों में जीव सिद्धान्त या जीवात्मा का सिद्धान्त और महर्षि दयानन्द
०८. षड्दर्शनों की वेदमूलकता और मुक्ति विचार के सन्दर्भ में महर्षि दयानन्द
०९. षड्दर्शनों की वेदमूलकता प्रत्यक्ष प्रमाण के सन्दर्भ में- एक विवेचना
१०. षड्दर्शनों में अनुमान प्रमाण की वेदमूलकता का समीक्षात्मक विशेषण
११. षड्दर्शनों में बन्धन का सिद्धान्त और वेदमूलकता
१२. वेदों के सन्दर्भ में षड्दर्शनों की प्रमुख मान्यताएँ और महर्षि दयानन्द
१३. षड्दर्शनों में मोक्ष प्राप्ति के साधन और महर्षि दयानन्द
१४. षड्दर्शनों में सत् के स्वरूप की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द
१५. षड्दर्शनों में कर्म सिद्धान्त और महर्षि दयानन्द
१६. षड्दर्शनों में पदार्थ विवेचन और महर्षि दयानन्द
१७. षड्दर्शनों में ब्रह्म एवं जीव सम्बन्धों की विवेचना की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द
१८. षड्दर्शनों के समन्वय की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द
१९. षड्दर्शनों में वेद विचार और महर्षि दयानन्द
२०. षड्दर्शनों में त्रैतवाद की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द
२१. महर्षि दयानन्द के अनुसार षड्दर्शनों का समन्वय
२२. वैशेषिक दर्शन की वेदमूलकता
२३. न्याय दर्शन की वेदमूलकता
२४. सांख्य दर्शन की वेदमूलकता
२५. योग दर्शन की वेदमूलकता
२६. मीमांसा दर्शन की वेदमूलकता
२७. वेदान्त दर्शन की वेदमूलकता
२८. वेदान्त दर्शन में वर्णित ब्रह्म के स्वरूप की वेदमन्त्रों से पुष्टि।

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ

०१. षड्दर्शन समन्वय- श्री प्रशान्त आचार्य
०२. आचार्य उदयवीर शास्त्री का षड्दर्शन भाष्य एवं विवेचना ग्रन्थ
०३. योग दर्शन भाष्य-पं. राजवीर शास्त्री
०४. स्वामी ब्रह्ममुनि के दर्शन भाष्य
०५. स्वामी दर्शनानन्द जी के दर्शन भाष्य
०६. भारतीय दर्शन (दो भाग)- डॉ. राधाकृष्णन्
०७. महर्षि दयानन्द सरस्वती के समस्त ग्रन्थ
०८. दर्शन तत्त्व विवेक- आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री
०९. षड्दर्शन समन्वय-पं. विद्यानन्द शर्मा
१०. भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण- एम. हिरियन्ना
११. भारतीय दर्शन-एस.एन. दासगुप्त
१२. भारतीय दर्शन-दन्त एवं चटर्जी
१३. भारतीय दर्शन- एन.के. देवराज
१४. भारतीय दर्शन-जी.डी. शर्मा
१५. भारतीय दर्शन-उमेश मिश्र
१६. भारतीय दर्शन-बलदेव उपाध्याय
१७. सिक्स सिस्टम ऑफ इण्डियन फिलॉस्फी- एफ. मैक्समूलर
१८. रिचर्ड गार्वे- सांख्य फिलॉस्फी

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

कृष्ण जन्माष्टमी पर विशेष...

आर्यसमाज की दृष्टि में योगेश्वर कृष्ण

कन्हैयालाल आर्य

महान् नीतिज्ञ, शील की प्रतिमा, सदाचार की प्रतिमूर्ति, वेद-विद्या के सागर, आदर्श साम्राज्य निर्माता, शूर शिरोमणि, भारत-भावन श्री कृष्ण जी के सम्बन्ध में आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास में लिखते हैं-

''श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्तपुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण, श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्यन्त, बुरा काम, कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा।''

महाभारत में वर्णित श्रीकृष्ण पर हमें गर्व होना चाहिये। उन्होंने अति विकट परिस्थितियों में संघर्ष करके दिखाया, जिसकी कल्पना भी उसके पूर्व नहीं की गई थी। सत्य, न्याय, प्रेम, दया, करुणा, अहिंसा, धर्म, अध्यात्म से लेकर सम्पूर्ण सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षक कोई इस धरा पर हुआ तो वह योगेश्वर श्रीकृष्ण जी ही थे। ईश्वरभक्त विश्वगुरु योगेश्वर कृष्ण भारतीय संस्कृति के उज्ज्वलतम नक्षत्र हैं। इनके चरित्र की आभा मानव मन को किंकर्त्तव्यविमूढ़ता से उबारने में रामबाण औषधि है। योगेश्वर श्रीकृष्ण जी महाराज का जीवन ऋषियों, मुनियों एवं महाराजा जनक जैसे महान् आर्ष पुरुषों के सदृश था।

न केवल भारत के इतिहास में वरन् विश्व के इतिहास में ऐसा अद्‌भुत, विलक्षण और बहुआयामी व्यक्तित्व दुर्लभ है, जैसा योगीराज श्रीकृष्ण जी का है। श्रीकृष्ण जी भारतीय जनमानस के लिए अलौकिक, दिव्य एवं पूज्य महापुरुष हैं। उनका वास्तविक जीवन और चरित्र महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित ग्रन्थ महाभारत में मिलता है, जहाँ उन्हें अत्यन्त पवित्र, धर्मात्मा, योगीराज, नीतिनिपुण, राष्ट्रनायक, अत्यन्त विनम्र, शास्त्रज्ञ, सर्वप्रिय, निर्भीक वक्ता आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है।

श्रीकृष्ण जी भारतीय संस्कृति में कर्म की प्रधानता का उपदेश देने वाले, कर्म के मूर्त्तरूप थे। न केवल भारतवर्ष बल्कि विश्व को कर्म का सन्देश देने वाले और गीता का ज्ञान देने वाले योगेश्वर श्रीकृष्ण जी करोड़ों की आस्था के प्रतीक हैं। श्रीकृष्ण जी की पहचान मात्र गीता या महाभारत से नहीं है बल्कि सारा युग ही उनका था। जब तक वे रहे, अन्याय, अत्याचार, हिंसा, द्वेष, पाखण्ड, अन्धविश्वास और अनाचार के पाँव जमने नहीं दिये। ऐसे महासंकल्पी, महानीतिज्ञ, युगसंस्थापक, युगनिर्माता के जन्मदिन (जन्माष्टमी) पर हम यह प्रतिज्ञा करें कि उस महामानव द्वारा स्थापित मूल्यों को जीवन में आत्मसात् कर अपने जीवन के साथ-साथ अपने समाज व राष्ट्र को उसी प्रकार से गौरवशाली बनायेंगे जैसे योगेश्वर का था।

श्रीकृष्ण जी के उदात्त, सात्त्विक और उज्ज्वल व्यक्तित्व को भागवत पुराण एवं लोक साहित्य में कामी, लम्पट, माखनचोर, गोपियों के साथ रासलीला करने वाला तथा उनके वस्त्र हरण करने वाला बताया गया है। योगेश्वर श्रीकृष्ण जी को, उनके दिव्य और गरिमामय चरित्र को विकृत एवं कलंकित करके उनके साथ, ऐसी मनगढ़न्त अश्लील लीलायें व बातें जोड़ दी गई हैं जिन्हें पढ़कर और सुनकर लज्जा से सिर झुक जाता है। वैदिक विद्वानों ने सदैव महाभारत के आधार पर श्रीकृष्ण के यथार्थ चरित्र को चित्रित किया है जो अत्युत्तम है।

पौराणिक जगत् को महर्षि दयानन्द के प्रति नतमस्तक होना चाहिये कि उन्होंने योगेश्वर श्रीकृष्ण जी के उस चरित्र को विश्वसमाज के सामने प्रस्तुत किया, जैसा कि उनका वास्तविक जीवन था, वरना श्रीमद्‌भागवत पुराण के रचयिता ने तो उनके जीवनचरित्र का इतना हनन कर दिया था कि विश्वसमाज उनके यथार्थ स्वरूप से वंचित हो गया था। उसी के कारण आज भी हमारे समाज का एक बहुत बड़ा भाग श्रीकृष्ण जी को ईश्वर का अवतार मानता है, परन्तु ऐसा नहीं है। वे न तो ईश्वर थे और न ही ईश्वर के अवतार थे। यदि वे ईश्वर होते तो परमात्मा को आत्मा से भिन्न न मानते। गीता में १३वें अध्याय के १२वें श्लोक में

उन्होंने स्वयं कहा है-

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादि मत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्येते।।

अर्थात् परमात्मा ओ३म् ही आत्मा के द्वारा जानने योग्य है। उसी को जानकर आत्मा अमृतरस का पान करता है।

स्वयं यजुर्वेद (४०/८) ईश्वर के स्वरूप की चर्चा इस प्रकार करता है-

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धम्अपापविद्धम्।
कविर्मनीषिः परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।

(सः) वह ईश्वर (परिअगात्) सर्वत्र व्यापक है (शुक्रम्) जगत् उत्पादक है। (अकायम्) शरीर रहित (अव्रणम्) शारीरिक विकाररहित (अस्नाविरम्) नाड़ी और नस के बन्धन से रहित (शुद्धम्) पवित्र (अपापविद्धम्) पाप से रहित (कविः) सूक्ष्मदर्शी, (मनीषी) ज्ञानी (परिभूः) सर्वोपरि वर्तमान (स्वयम्भूः) स्वयंसिद्ध (शाश्वतीभ्यः) अनादि (समाभ्यः) प्रजा= जीव के लिए (याथातथ्यतः) ठीक-ठीक अर्थात् कर्मफल का (व्यदधात्) विधान करता है।

इस परिभाषा को देखा जाये तो श्रीकृष्ण जी कहीं भी परमेश्वर नहीं दिखाई देते। ईश्वर सर्वव्यापक होता है, परन्तु श्रीकृष्ण जी जब इन्द्रप्रस्थ में होते हैं तो द्वारका में नहीं होते और द्वारका में होते हैं तो इन्द्रप्रस्थ में नहीं होते। यहाँ पर कुछ लोग शंका करते हैं कि यदि श्रीकृष्ण जी ईश्वर के अवतार नहीं थे तो उन्होंने द्रौपदी का चीर कैसे बढ़ा दिया था?

सच्चाई यह है कि शुद्ध महाभारत, सभा पर्व, अध्याय ६७ श्लोक ३४ में इस प्रकार की कोई चर्चा नहीं मिलती कि द्रौपदी की साड़ी खींचकर उसे नग्न करने का प्रयास किया गया था। न ही महाभारत में इस चमत्कार का कोई श्लोक मिलता है।

सच्चाई तो यह है कि जिस समय द्रौपदी को सभा में लाया गया था उस समय श्रीकृष्ण जी वहाँ उपस्थित ही नहीं थे। शुद्ध महाभारत के वनपर्व अध्याय २२ श्लोक ४२,४३ में यह स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि जब योगेश्वर कृष्ण 'काम्यवन' में पाण्डवों को मिलने के लिए गये तो श्रीकृष्ण जी ने कहा, ''यदि मैं उस समय हस्तिनापुर में होता तो युधिष्ठर के द्वारा जुआ खेलने का यह अनर्थ कभी न होने देता।''

अतः इन प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि न तो द्रौपदी की साड़ी उतारी गई थी और न ही योगेश्वर कृष्ण को उस समय पता ही था। यदि पता नहीं था तो श्रीकृष्ण जी सर्वज्ञ भी नहीं हो सकते। श्रीकृष्ण जी का जन्म हुआ था, मृत्यु हुई थी तो वे जन्म-मरण से रहित भी नहीं थे। शरीरधारी थे, नस-नाड़ी से रहित नहीं थे। ईश्वर बिना शरीर के इस विशाल सृष्टि को बना सकता है और उसे नियम में चला सकता है। उसे किसी तुच्छ अधर्मी को दण्ड देने के लिए शरीर की आवश्यकता नहीं पड़ती। अत्यन्त दुःख का विषय है कि इस अवतारवाद के भ्रम ने भारत की बहुत हानि की है। इन्हीं कारणों से हम परतन्त्र रहे। शत्रु से युद्ध करने की अपेक्षा ईश्वर के अवतार के प्रकट होने की प्रतीक्षा करते रहे और सोमनाथ का मन्दिर लुटता रहा। गौरी, गजनी, बाबर के द्वारा हज़ारों मन्दिरों को तोड़ दिया गया, अनेक हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया गया, अनेक विधर्मी बना दिये गये। असंख्य गौओं को काटा गया। अनेक महिलाओं का शील भंग कर दिया गया। भद्र पुरुषो! अवतार का सीधा सा सरल अर्थ है- नीचे उतरना। जब भगवान् सर्वत्र व्यापक है, चढ़ा हुआ ही नहीं है तो उतरेगा कैसे? वह तो सब स्थानों पर विद्यमान है।

गीता में स्वयं श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को उपदेश करते हुए परमात्मा के अस्तित्व को दर्शाया है। परमात्मा के अस्तित्व को मानने वाला बताइये स्वयं कैसे परमात्मा हो सकता है? कदापि नहीं हो सकता। गीता का अन्तिम श्लोक सारी गीता का निष्कर्ष है। यह श्लोक श्रीकृष्ण जी को ईश्वर का अवतार न मानकर एक महान् पुरुष ही सिद्ध करता है-

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।

(गीता १८/७८)

इस श्लोक में सञ्जय धृतराष्ट्र को कहता है, ''हे राजन्! जहाँ योगेश्वर श्री कृष्ण हैं और गाण्डीवधारी अर्जुन है वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है। ऐसा

मेरा मत है।'' सञ्जय के कथन अनुसार यह सिद्ध होता है श्रीकृष्ण और अर्जुन साथ-साथ जिस युद्ध में लड़ेंगे उसमें विजय मिलनी निश्चित है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि श्रीकृष्ण जी और अर्जुन दोनों की महाभारत युद्ध में भागीदारी थी, यह और बात है कि किसी की अधिक और किसी की कम! अर्जुन जहाँ बहुत बलशाली, पराक्रमी व धनुर्विद्या में अतिनिपुण क्षत्रिय था तो वहीं श्रीकृष्ण जी एक अति बुद्धिमान्, राजनीतिज्ञ, धैर्यवान्, विद्वान् तथा दूरदर्शी क्षत्रिय थे। अर्जुन यदि मानव थे तो श्रीकृष्ण महामानव थे। यदि श्रीकृष्ण ईश्वर के अवतार होते तो सञ्जय यह कहता कि पाण्डवों की ओर जब श्रीकृष्ण स्वयं ईश्वर के अवतार हैं तब कौरवों की जीत की सम्भावना करना ही व्यर्थ है अर्थात् पाण्डवों की जीत होना निश्चित है? सञ्जय का कथन भी श्रीकृष्ण को अवतार सिद्ध नहीं करता। इससे सिद्ध होता है कि श्रीकृष्ण जी ईश्वर के अवतार नहीं थे।

आर्यसमाज की दृष्टि में श्रीकृष्ण- आर्यसमाज श्रीकृष्ण जी को महर्षि दयानन्द की दृष्टि से देखता है, महर्षि द्वारा वर्णित आप्त पुरुष के रूप में मानता है। पुराणों द्वारा वर्णित श्रीकृष्ण जी का स्वरूप तर्क, प्रमाण, बुद्धि, विवेक, विज्ञान और युक्तियों के आधार पर सत्य नहीं है। आर्यसमाज श्रीकृष्ण जी को ईश्वर का अवतार न मानकर दिव्य गुणों से युक्त महापुरुष के रूप में मानता है। पौराणिक विचारधारा को माननेवाले व्यक्ति कहते हैं कि आर्यसमाजी नास्तिक हैं, क्योंकि वे श्रीकृष्ण जी को नहीं मानते, परन्तु वास्तविकता यह है कि आर्यसमाज श्रीकृष्ण जी को पुराणपंथियों से अधिक मानता है। हम बड़े गर्व के साथ कह सकते हैं कि आर्यसमाज श्रीकृष्ण जी को जितना जानता और मानता है, उतना संसार का कोई भी आस्तिक नहीं मानता।

आर्यसमाज श्रीकृष्ण जी के महाभारत में वर्णित स्वरूप को मानता है। भागवत पुराण के कृष्ण गोपियों के साथ रासलीला रचाने वाले, माखन चुराने वाले, बांसुरी की धुन से गोपियों को अपनी ओर आकर्षित करने वाले और रसिक प्रवृत्ति के हैं, परन्तु आर्यसमाज के कृष्ण सर्वगुण सम्पन्न, महान् योगीराज, वेद-वेदांग-स्मृति आदि के ज्ञाता, न्यायशास्त्र व राजनीति में पारंगत, आदर्श राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ, नीतिनिपुण, राष्टनायक, सदाचारी, न्यायकारी, परोपकारी, सद्गृहस्थी, त्यागी, तपस्वी तथा उच्चकोटि के संयमी है।

पुराणपन्थी उनके चित्र की पूजा करके, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन रासलीलायें करके, मन्दिरों में उनसे सम्बन्धित सुन्दर-सुन्दर झाँकियाँ सजाकर, व्रत रखकर अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझ लेते हैं, परन्तु आर्यसमाज उनके चित्र की पूजा न करके उनके चरित्र की पूजा करता है। आर्यसमाज उनको एक महापुरुष मानकर उनके जीवन के गुणों को अपनाने की शिक्षा देता है।

जिज्ञासा हो सकती है कि श्रीकृष्ण जी जब ईश्वर का अवतार नहीं थे तो उन्हें आर्यसमाजी लोग भी बार-बार भगवान् कृष्ण क्यों कहते हैं। भगवान् शब्द ईश्वर का भी वाचक है और मनुष्य का भी। किसी विद्वान् ने भगवान् शब्द की व्याख्या करते हुए बताया है।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्रिय:।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।।

सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छह गुणों का नाम 'भग' है। जिसके पास ये गुण होते हैं- वह भगवाला अर्थात् 'भगवान्' होता है। अत: श्रीकृष्ण जी को भगवान् सम्बोधित करने में आश्चर्य ही क्या? परमात्मा भी इन भगों से परिपूर्ण होने से भगवान् है और मनुष्य भी भगवान् कहला सकता है। इतना अन्तर यहाँ अवश्य जान लेने योग्य है कि इन भगों के साथ-साथ परमात्मा में आनन्द, सर्वव्यापकता व सर्वज्ञता आदि गुण भी विद्यमान रहते हैं, जिनसे वह सृष्टि की उत्पत्ति, पालन, संहार भी करता है, परन्तु आत्मा में ये गुण नहीं होते। इस कारण कोई भी आत्मा कभी भी परमात्मा नहीं बन सकता।

सारे विश्व में अनेक महापुरुष हुए हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे। सभी महापुरुषों में अपनी-अपनी विशेषतायें थीं जिसके कारण उन्हें स्मरण किया जाता है, परन्तु श्रीकृष्ण जी वास्तव में अप्रतिम हैं, अनुपम हैं, उनकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती। उनके चरित्र के मुख्य गुण निम्नलिखित हैं-

१. योगेश्वर श्रीकृष्ण- स्वयं श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को उपदेश देते हुए गीता के दूसरे अध्याय के ४८वें श्लोक

में योग का अर्थ बताया है-

''**समत्वं योग उच्यते**'' इस उक्ति के अनुसार श्रीकृष्ण जी योगी ही नहीं समदर्शी भी थे।

२. कर्मकुशलता- योगीराज श्रीकृष्ण जी गीता २/५० में कहते हैं-

''**योगः कर्मसु कौशलम्**'' किसी भी कार्य को कुशलतापूर्वक, दत्तचित्त होकर करना ही योग है। श्रीकृष्ण जी कर्म को ही विशेष समझते थे तभी तो अर्जुन को कहते हैं- कर्म करना तुम्हारा कर्त्तव्य है, फल की चिन्ता मत करो।

३. विनम्रता- युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सभी ने अपने-अपने कार्य बाँट लिये, परन्तु श्रीकृष्ण जी ने देखा कि उन्हें कार्य सौंपे जाने के विषय में सब असमंजस में है तो उन्होंने नम्रतापूर्वक निवेदन किया, ''मुझे सेवा का कार्य सौंपा जाये, मैं सब अतिथियों के चरण धोऊँगा।''

४. शालीनता और शिष्टता- श्रीकृष्ण जी महान् राजा होते हुए भी जब भी श्री व्यास जी, धृतराष्ट्र, कुन्ती, युधिष्ठिर, भीष्म पितामह, विदुर आदि से मिलते तो उनके चरण-स्पर्श करना न भूलते थे।

५. न्यायप्रिय- चाहे कौरव अत्यधिक शक्तिशाली थे, परन्तु अन्यायकारी कौरवों का साथ न देकर न्याय पर चलने वाले धर्मात्मा पाण्डवों का साथ दिया।

६. वीर, स्वाभिमानी, निर्भीक- शान्ति प्रस्ताव प्रस्तुत करने वाले श्री कृष्ण जी को दुर्योधन अपमानित करने का प्रयास करता है, वे दुर्योधन को फटकारते हुए उसके भोजन के निमन्त्रण को अस्वीकार करते हैं। स्वयं को कैद करने का प्रयास करने पर श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र को ललकारते हैं और अपने वीर, स्वाभिमानी एवं निर्भीक होने का परिचय देते हैं।

७. निर्लोभी- कंस का वध किया, परन्तु राज्य अपने नाना उग्रसेन को दे दिया। जरासन्ध का वध करके मगध का राज्य उसके पुत्र सहदेव को दे दिया। महाभारत का युद्ध जीतकर हस्तिनापुर का राज्य युधिष्ठिर को दे दिया। उन्होंने लोभरहित होकर अन्याय-अत्याचार को समाप्त किया।

८. कुशल नीतिनिपुण- उन्होंने सज्जनों के साथ शिष्टाचार और दुष्टों के साथ '**शठे शाठ्यम् समाचरेत्**' की भावना को न्याय संगत माना।

९. यज्ञप्रिय- गीता ३/१३ में कहा है- सर्वदा सुख चाहने वाले को सदा श्रेष्ठ कर्मों में संलग्न रहना चाहिये। यज्ञ एक श्रेष्ठतम कर्म है। जो यज्ञ के पश्चात् खाता है (यज्ञशेष) अर्थात् अमृत खाता हुआ सब दुःखों से मुक्त हो जाता है।

१०. ओ३म् ही ईश्वर का मुख्यनाम है ऐसा मानना- गीता ८/१४-१५ में कहा है-इसी मेरे प्यारे इष्ट 'ओ३म्' को जो भक्त नित्य नियम से जपता है, वह बार-बार के जन्म तथा मृत्यु के दुःख से बचकर परमगति (मोक्ष) को प्राप्त करता है।

१०. गृहस्थ होते हुए भी योगी- श्रीकृष्ण जी साधारण गृहस्थ ही नहीं बल्कि एक आदर्श गृहस्थ हैं। आदर्श गृहस्थ के घर में श्रेष्ठ सन्तान, पत्नी धार्मिक, धन की प्रचुरता, यश की प्राप्ति सभी गुण होते हैं। श्रीकृष्ण जी इन सभी गुणों के सागर थे।

११. आदर्श मित्र- मित्रता निभाना कोई भी श्रीकृष्ण जी से सीखे। मित्र चाहे निर्धन ही क्यों न हो। सुदामा के आने पर उसका न केवल स्वागत किया अपितु उसको धन-धान्य से सम्पन्न कर दिया।

१२. ईश्वरभक्त- प्रतिदिन दोनों समय बड़ी श्रद्धा और निष्ठा से सन्ध्या किया करते थे। यहाँ तक कि दूत के रूप में जब श्रीकृष्ण जी हस्तिनापुर जा रहे थे तो रास्ते में सायंकाल के समय रथ रोककर सन्ध्या की, यह महाभारत में आता है।

अवतीर्य रथात् तूर्णां कृत्वा शौचं यथाविधि।
रथमोचनमादिश्य सन्ध्यामुपविवेश सः।।

१३. नारी सम्मान की रक्षा प्रथम कर्त्तव्य आदि।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सदैव महापुरुषों के निर्मल एवं उज्ज्वल जीवन-चरित्र को संसार के सामने रखा है। महर्षि का यह गुण हमें विरासत में मिला है। अतः हम श्रीकृष्ण जी के वास्तविक स्वरूप को समझें। जिस प्रकार श्रीकृष्ण जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन सत्य, धर्म और न्याय की स्थापना में व्यतीत कर दिया, उसी प्रकार हम भी अपने चारों ओर फैले हुए अज्ञान, अभाव, अन्याय, अधर्म, आतंकवाद, भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए श्रीकृष्ण जी के गुणों और नीतियों को जीवन में धारण करके वैसा ही आचरण करें, तभी हमारा श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का पर्व मनाना सार्थक होगा। **४/४५, शिवाजी नगर, गुरुग्राम, हरियाणा**

ऐतिहासिक कलम से....

क्या आर्यसमाज राजनीति में भाग ले?

प्रकाशवीर शास्त्री

बहुत बुस गया है यह प्रश्न, जिस पर कलम उठाने के लिये ज्ञानगंगा के संपादक महोदय ने प्रेरणा की है। पर चलो, संभव है ज्ञान की इस गंगा के सम्पर्क से ही फिर कुछ उसमें ताजगी आ जाय लेकिन मुझे तो आशा कम है। मेरे जैसे आशावादी व्यक्ति को निराशा भरे शब्द लिखते हुए देखकर पाठक आश्चर्य तो करेंगे, परन्तु क्या करें परिस्थितियों ने ऐसा सोचने पर विवश कर दिया है। जिन हाथों में बार-बार यह प्रश्न विचार के लिये आता है उनमें दो प्रकार के व्यक्ति हैं। कुछ तो ऐसे हैं, आर्यसमाज के अतिरिक्त किसी और भी राजनीतिक संस्था में जिनके पैर अटके हुए हैं या उधर जाने को उनके दरवाजों के चक्कर काटने आरम्भ उन्होंने कर दिये हैं। दूसरे ऐसे हैं जो इस प्रश्न पर विचार करते समय अपने व्यक्तित्व को सामने रखकर अधिक सोचते हैं। आर्य समाज, वैदिक संस्कृति और जन-कल्याण की विशुद्ध भावनाओं से प्रेरित होकर सोचने वाले या तो हैं नहीं और होंगे भी तो कोई बिरले, जिनसे हमारा गहरा परिचय नहीं है।

आर्य राजनीति कुछ नहीं, अथवा आज के युग में उसका क्या महत्त्व हो सकता है या प्रचलित राजतन्त्र अधिक स्पष्ट और व्यवस्थित है, ऐसा कहने वाले भी यद्यपि आज भारत में बहुत हो गये हैं जो विदेशी चश्मे चढ़ाकर ही हर समस्या पर विचार करते हैं। परन्तु हम उनसे सहमत कभी हुए नहीं। माना कि राजतन्त्र की उनकी व्याख्या सुरसा के मुँह की तरह दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है और आर्य राजनीति कुछ सूत्रों तक ही सीमित है। आकार-प्रकार को देखकर ही जो पश्चिमीय राजनीति की सराहना करते हैं अथवा उसकी जूठन भारतीयों को भी वितीर्ण करना चाहते हैं, वे मनु, बृहस्पति, शुक्राचार्य, चाणक्य और कामन्दक जैसा नीतिवेत्ता यूरोप के नारकीय वातावरण में कहीं ढूँढ सकेंगे? राजनीतिक दाँव-पेच एवं कानून के शिकंजों में कसी हुई विनाशोन्मुख मानवता पश्चिमीय देशों में आज कराह रही है। राजनीति की आड़ में छल प्रपंच-दम्भ-विश्वासघात और मानवीय संहार की योजनायें बनाई जा रही हैं, जबकि पर्वतीय उपत्यकाओं के सात्त्विक वातावरण में जन्म लेने वाली आर्य राजनीति ने सत्यं-शिवं-सुन्दरम् के ही स्वप्न देखे थे।

''**वसुधैव कुटुम्बकम्**'' विश्व परिवार का आदर्श सदैव उसका आराध्य रहा है। आर्य राजाओं ने कभी लड़ाइयाँ न लड़ी हों, अत्याचार के विपरीत कोई दृढ़ पग न उठाया हो, अशान्ति और उपद्रव को सहन कर लिया हो सो भी बात नहीं हैं, परन्तु उसके भी प्रकार थे, साम-दाम-दण्ड-भेद का क्रमशः विकास आर्य राजनीति में पग-पग पर बोलता हुआ मिलेगा। देश निष्कासन और भयंकर यातनायें यह तो अन्तिम व्यवस्थायें थीं, उससे पूर्व साम और दान का विधान उसमें था। अपराधी ही दंड का भागी होता था अन्य नहीं। जापान के सुन्दर नगर हिरोशिमा पर अणुबम डालकर सहस्त्रों निरपराध अबोध शिशु तक भी भून डाले गये, परन्तु कुरुक्षेत्र और लंका के मैदानों में जो युद्ध हुए उनमें किसी भी नगर को लूटने, वहाँ की नारियों के सतीत्व अपहरण अथवा अमानवीय व्यवहार की चर्चा तक भी नहीं मिलती। विजयी राजा युद्ध में मारे गये व्यक्तियों का दाहकर्म तक भी उसी प्रकार करते थे जैसे अपने किसी सगे-सम्बन्धी का। राम ने विभीषण को रावण का दाहकर्म संस्कार करने के लिये भी यह ही शब्द कहे थे-

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारः स हि बन्धुस्तथैव मे।

अर्थात् आर्यों के वैर शत्रु के मरने तक होते हैं, बाद में पीढ़ियों अथवा देशों से नहीं निकाले जाते। अब विधिवत् इसका दाहकर्म कराओ क्योंकि अब तो जैसा यह तुम्हारा भाई है वैसा ही मेरा है। जापान और जर्मनी की ध्वस्त मानवता एवं उन देशों के साथ जो उनके प्रतिपक्षी देशों ने व्यवहार किया उससे यदि आर्य राजा एवं राजनीति को तोला जाय तो उसका स्तर बहुत हल्का उतरेगा। चाणक्य का नीतिदर्शन मगध के कण-कण में ही आज प्रस्फुटित न

होता, अपितु विश्व के वृद्ध राजनीतिज्ञ भी उसके सामने नतमस्तक हैं। अमेरिका-रूस के अणु अस्त्र महाभारत कालीन गैसों के प्रयोग के सामने जहाँ तुच्छ प्रतीत होते हैं वहाँ विश्व की मानवता के लिये संहार की तय्यारी में लगे हैं।

आर्य राजनीति और उसके अंग-प्रत्यंग, व्यवस्था एवं विधान सारे ही विश्वशान्ति में सहायक तथा प्रेरक हो सकते हैं, परन्तु आज उस नीतिशास्त्र का प्रचलन या उस दायित्व को अपने कन्धों पर ले चलने वाले हैं कहाँ? महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने आर्य साम्राज्य और आर्य राजनीति की कई स्थानों पर चर्चा की है, परन्तु उस क्रान्तिकारी यज्ञ के होता समाज सुधार पर तो बल देते रहे, लेकिन आर्य साम्राज्य के स्वप्नों से हटते चले गये। काँग्रेस की स्थापना को कई वर्ष बीत जाने पर भी उसमें कोई तड़पते हुए व्यक्तित्व न आ सके और जो दो चार भी थे ऋषि के भक्त आर्यसमाजी थे। श्यामजी कृष्णवर्मा, देवता-स्वरूप भाई परमानन्द, पंजाब केसरी लाला लाजपतराय आदि के प्रभावशाली व्यक्तित्व काँग्रेस की अपेक्षा आर्यसमाज से सम्बन्धित अधिक माने जाते थे। लाला लाजपतराय को जब मांडले भेजा गया, पटियाला का जब सन् १९११ में केस हुआ और भाई परमानन्द को जब फाँसी लगाई जानेवाली थी उस समय बहुत बड़ी भूल हुई, कुछ गवर्नमेंटपरस्त और दुर्बल आर्य समाजियों ने उस समय अपने बचाव के लिये यह फतवे देकर देश की श्रद्धा को अपने हाथों से गँवा दिया कि आर्यसमाज का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है। आरम्भ में यदि यह भूल न हुई होती तो आर्यसमाज का राजनीतिक क्षेत्र प्रभावशाली और स्पष्ट रहता और यदि बीच में किसी कारण से लड़खड़ा भी गया था तो मुसलमानों के राजनीति में आने से जो भिन्नता उस क्षेत्र में आई थी जब लाला लाजपतराय, मालवीय जी, स्वा. श्रद्धानन्द और भाई परमानन्द आदि ने हिन्दू महासभा का मंच अपनाया था, उस समय आर्यसमाज को राजनीतिक दृष्टि से फिर सशक्त भी बनाया जा सकता था। ऋषि की 'पराधीनता का जुआ भारत के कन्धे से उतार फेंकने की' भावना ने उक्त महानुभावों के अतिरिक्त सरदार भगतसिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, रोशनसिंह पर काकोरी केस के और भी कई अभियुक्त क्रान्तिकारी विचारों वाले बनाये पर आर्यसमाज ने उनका कोई लाभ न उठाया। वह तो वह, हिन्दी साहित्य के गौरव स्व. पं. पद्मसिंहजी शर्मा, स्व. पं. नाथूरामजी शंकर, सम्पादकाचार्य पं. रुद्रदत्त जी आदि जो आर्यसमाजी होने के कारण हिन्दी जगत् में ऊंचा स्थान न पा सके उनका आर्यसमाज में भी क्या स्थान रहा! गवर्नमेंटपरस्त लोगों ने इतना दुर्बल इस संस्था को बना दिया जो उधर ध्यान ही न जाने दिया। आर्यसमाज के मंच से जब कोई पराधीनता पाश से मुक्त होकर आर्य राज्य की कल्पना की बात कहता तो उनके कान खड़े हो जाते थे। धीरे-धीरे खंडित होकर देश स्वाधीन सन् १९४७ में हुआ। अब जो अहिंसा के चक्र में बापूजी के साथ लगे आर्यसमाजी थे उनके जीवन का बसन्त आ गया और ईश्वर अल्लाह एक ही नाम के नारे उन्होंने भी गुंजाने आरम्भ किये। देश जो विषाक्त मुस्लिम मनोवृत्ति से कट-छंट और बरबाद हो चुका था वह इन नारों को न तो अब सुनना ही चाहता था और न नारे लगाने वालों पर देर तक विश्वास करना चाहता था। लाशों पर पाकिस्तान बनेगा का नारा लगानेवाले उसे बैठकर आशीर्वाद दे रहे थे। मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति फिर से अंगड़ाई लेने लगी थी। ऐसे समय में आर्यसमाज के सामने इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक था कि देश के प्रगतिशील आर्यसमाजी कोई पृथक् राजनीतिक संगठन बनायें या काँग्रेस में ही रहें। पहले अंग्रेज को कन्धे से कन्धा लगाकर निकालने का प्रश्न सामने था जिसका मुसलमानों ने अनुचित लाभ उठाया परन्तु अब तो देश को संभालने का प्रश्न सामने था। कलकत्ता और मेरठ में हुए आर्य महासम्मेलनों में उस विषय पर पर्याप्त चर्चा भी चली और आर्यजगत् का स्पष्ट बहुमत इस पक्ष में था कि आर्यसमाज को राजनीति में आना चाहिये भले ही नाम आर्यसमाज न हो। पर देश की आर्य जनता रोज तो इकट्ठी होकर बैठने वाली थी नहीं, वह तो अपनी हार्दिक भावना दोनों ही स्थानों पर स्पष्ट व्यक्त कर चली गई, लेकिन जिनके हाथ में समाज की बागडोर थी उनमें से कुछ जो शासनतन्त्र में फिट हो चुके थे वे तो भला सोचने ही क्यों लगे! कुछ उधर पहुँचने की तय्यारी में उन द्वारों के चक्कर काट रहे थे। दूसरे और जो इन दोनों ही बातों से

पृथक् थे वे अपनी तीन पातकी छान अलग बनाने में लगे थे। आर्यसमाजी भावनाओं का लाभ उठाकर अपनी पृथक् राजनीतिक संस्था बनाकर उसको पुष्ट करने में लगे हुए जबकि उस संस्था के पीछे सिवाय कुछ असफल योजनाओं और मोहक नारों के कुछ नहीं था। परिणाम जो होना था वह ही हुआ, आर्यसमाजी बिखर गये जो एक स्वाभाविक बात थी। आर्यसमाजी हाथ पर हाथ रखकर मक्खी मारनेवाला तो होता नहीं, **आर्यसमाजी बनता ही वह है जिसमें प्रगतिशीलता के कुछ भी परमाणु हों**। उसी आधार पर हरेक अपने अनुरूप राजनीतिक दलों में पहुँच गया, परन्तु इतना आज भी हमारा विचार है जो जहाँ है वह वहाँ सन्तुष्ट नहीं है, पर क्या किया जाय मन मारकर भी कुछ कदम उठाने ही पड़ते हैं।

अब जबकि देश में राजनीतिक पार्टियाँ इतनीं अधिक बन गई हैं जिनकी एक साथ गणना भी नहीं की जा सकती, उस समय नई पार्टी खड़ी करने की सोचना कोई बुद्धिमत्ता न होगी। अब तो देश का रुख राजनीतिक संगठनों को कम करने की ओर है न कि बढ़ाने की ओर। उससे क्या लाभ जो आज बने और फिर कल समझौते को किसी का द्वार खटखटाये। अब वह समय तो गया निकल जब कोई पृथक् राजनीतिक संगठन खड़ा किया सकता था, अब तो जो बने-बनाये हैं उन्हीं में से जो अपने निकट हों उसे अपना लेना चाहिये और स्पष्ट घोषणा कर देनी चाहिये कि हमारे सैद्धान्तिक दृष्टियों से राजनीति में निकटतम संस्था यह है, परन्तु जैसे पीछे राजनीतिक संगठन पृथक् बनाने का समय हाथों से खो दिया, मुझे भय है कहीं एक किसी संस्था को खुलकर अपनाने का समय भी न बीत जाय। प्रभावशून्य संस्थाओं की मैत्री से किसी को कोई लाभ नहीं होता और दुश्मनी से हानि नहीं होती! क्या हैदराबाद सम्मेलन इस विषय में कोई निर्णायक पग उठा सकेगा?

ज्ञानगंगा के क्रान्तिदूत अंक
सन् १९५४ ई. से साभार

अपील

'सत्यार्थप्रकाश' जैसी क्रान्तिकारी पुस्तक के प्रति किस आर्य की श्रद्धा नहीं होगी और कौन वैदिकधर्मी यह नहीं चाहेगा कि यह पुस्तक हर मनुष्य के हाथ में होनी चाहिये? आर्यों की इस तीव्र अभिलाषा को परोपकारिणी सभा गत ५ वर्षों से साकार रूप देने में प्रयासरत है। साथ में यह भी चाहती है कि यह अमूल्य पुस्तक आकार-प्रकार में भी आकर्षक ही हो। इन सबको ध्यान में रखकर सभा ने विश्व पुस्तक मेले में इसे ऐसे व्यक्तियों में वितरित करने का निश्चय किया जिन तक यह अभी नहीं पहुँच पाई थी। इस कार्य में परोपकारिणी सभा तो एक माध्यम मात्र है, मुख्य वितरक आर्यजन ही हैं। विश्व पुस्तक मेला- २०१९ का कुछ ही समय शेष है। अत: आर्यों से अपील है कि अधिक से अधिक लोगों तक सत्यार्थ पहुँचे, इसके लिये मुक्त हस्त से सहयोग करें। सत्यार्थप्रकाश के साथ-साथ महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र भी नि:शुल्क वितरित किया जायेगा। आप जितनी प्रतियाँ अपनी ओर से बंटवाना चाहें, उतनीं पुस्तकों पर आपका नाम छापा जायेगा।

एक प्रति की लागत- १००रु.

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

आर्यजनों से निवेदन

विगत कुछ दिनों से एक विरोधी समूह द्वारा योजनाबद्ध ढंग से महर्षि के मिशन को बाधित करने के उद्देश्य से इस प्रकार का दुष्प्रचार सोशल मीडिया पर किया जा रहा है, जिससे यह संदेश जाता प्रतीत होता है कि ऋषि उद्यान में सभा द्वारा संचालित आर्ष गुरुकुल को बन्द कर दिया गया है।

सभा ने इस संबन्ध में अपना स्पष्टीकरण सोशल मीडिया में फेसबुक इत्यादि के माध्यम से दिनांक २१.०८.२०१८ को प्रसारित कर दिया था, परन्तु दुष्प्रचारक अभी भी सभा के अधिकारियों के विरुद्ध निरन्तर प्रचार कर रहे हैं।

परोपकारिणी सभा आधिकारिक रूप से आर्यजनों को आश्वस्त करना चाहती है कि गुरुकुल बन्द नहीं हुआ है, ये मिथ्या प्रचार है। शीघ्र ही नये आचार्य की नियुक्ति के साथ ही गुरुकुल कुछ सार्थक सुधारों के साथ नये ब्रह्मचारियों को इससे जोड़ेगा।

गुरुकुल के जिन विद्यार्थियों और आचार्यों ने गुरुकुल छोड़ा है, वे अपने पूर्व आचार्यों के कहने से या स्वेच्छा (?) से गए हैं। सभा ने किसी विद्यार्थी या आचार्य से जाने को नहीं कहा था।

गुरुकुल की अव्यवस्थाओं, यथा-विद्यार्थियों की निरन्तर घटती संख्या, आचार्य का लम्बे समय के लिए बारंबार गुरुकुल से दूर रहना, सभा को गुरुकुल की गतिविधियों की जानकारी न देना, ऋषि उद्यान के प्रकल्पों, शिविरों इत्यादि में बार-बार असहयोग करना तथा विद्यार्थियों एवं अध्यापकों को सहयोग करने से रोकना, सभा के अनुशासन में न रहना और सभा के निर्णयों एवं अधिकारियों के निर्देशों की अवहेलना करना तथा एकाधिकार की प्रवृत्ति प्रदर्शित करना आदि असहयोग के कारण सभा की बैठक में लिए गए निर्णय के अनुसार नये आचार्य की नियुक्ति का निर्णय लिया गया है।

आर्य जनता और परोपकारिणी सभा के शुभचिन्तकों से अपील है कि स्वार्थी तत्त्वों के भ्रामक प्रचार पर कृपया ध्यान न दें। सभा यह विश्वास दिलाती है कि कीर्तिशेष आचार्य धर्मवीर जी द्वारा स्थापित यह गुरुकुल आशानुरूप निरन्तर उन्नति के नए कीर्तिमान स्थापित करेगा।

गुरुकुल के अतिरिक्त सभा के अन्य प्रकल्प एवं कार्यक्रम अधोलिखित और हैं, जो निरन्तर चल रहे हैं और चलते रहेंगे-

१. ऋषि के ग्रन्थों, हस्तलेखों तथा अन्य सामग्री का डिजिटलाइजेशन।

२. ऋषि के ग्रन्थों का शुद्ध एवं प्रामाणिक रूप में प्रकाशन।

३. 'परोपकारी' पत्रिका प्रकाशन

४. सैद्धान्तिक व महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन

५. महर्षि द्वारा प्रयोग की गई वस्तुओं का संरक्षण

६. गौशाला

७. अतिथिशाला

८. वानप्रस्थ-संन्यास साधना केन्द्र

९. विभिन्न शिविरों का आयोजन-

(क) योग साधना एवं सेवा शिविर

(ख) आर्य वीर दल शिविर

(ग) आर्य वीरांगना शिविर

१०. उपदेशकों तथा भजनोपदेशकों को प्रचारार्थ भेजना

११. वार्षिक ऋषि मेले का आयोजन

१२. आर्य सिद्धान्त शिविर, संस्कार/पौरोहित्य शिविर इत्यादि के आयोजन के लिए भी प्रयास किए जाएँगे।

अत: आर्यजनों व अन्य सहयोगियों से निवेदन है कि वे कृपया विरोधियों एवं सुनियोजित दुष्प्रचारकों के भ्रामक प्रचार पर ध्यान न दें तथा महर्षि की उत्तराधिकारिणी सभा में विश्वास बनाए रखें। यह हमारा मिशन है और सभा के सदस्य प्राणपण से इसे बढ़ाते रहेंगे।

सुरेन्द्र कुमार — **(कार्यकारी प्रधान)**

ओम् मुनि — **(मन्त्री)**

पाठकों की प्रतिक्रिया

श्रीमान् सम्पादक महोदय!

१. २०१८ जून द्वितीय अंक प्राप्त हुआ। इस अंक में आपने अपने समय के दो दिग्गज विद्वानों का शास्त्रार्थ जो एक सौ छः-सात वर्ष पूर्व हुआ था 'वृक्षों में जीव है या नहीं' उसको पुनः प्रकाशित कर हमारे जैसे जिज्ञासु जनों का अत्यन्त उपकार किया है। क्योंकि आर्यसमाज में आज भी ये दोनों विचारधाराएँ परस्पर संवाद का केन्द्र बनती रहती हैं। 'वृक्षों में अभिमानी जीव है' शास्त्रीय दृष्टि से इसका प्रतिपादन युक्ति व प्रमाणों के द्वारा प्रतिवादी भयंकर पं. गणपति शर्मा ने जिस प्रकार प्रस्तुत किया है, वह उन जैसे विद्वान् के लिए ही योग्य है। उनकी युक्तियों व प्रमाणों को देखकर अब आर्यसमाज में इस विषय पर निरर्थक विवाद नहीं करना चाहिए। यह तो ठीक है कि चिन्तन और शास्त्रों का आलोड़न-विलोड़न होते रहना चाहिए, किन्तु किसी विषय का पिष्टपेषण तो किसी को भी रुचिकर प्रतीत नहीं होगा। अब तो 'वृक्ष-वनस्पतियों में जीव है' इसका प्रतिपादन जो कभी जगदीशचन्द्र बसु ने किया था, उसका बच्चा-बच्चा प्रत्यक्षीकरण कर रहा है। इस प्रकार के पूर्वतनीय लेखों के प्रकाशन से नवीन पाठकों को अत्यधिक लाभ मिलता है। धन्यवादसहित...

आपका

सदानन्द शास्त्री, जवाहरलाल नेहरू वि. वि., नई दिल्ली

२. सम्पादक जी, आकर्षक 'परोपकारी' पाक्षिक का जून प्रथम २०१८ का अंक मिला। श्री प्रकाश आर्य का लेख पढ़ा। 'मानवता को नष्ट करता, जातिवाद' एक ज्वलन्त मुद्दा है। जिसका हल असम्भव लगता है। भारतवर्ष से आगे बढ़कर मॉरिशस में इसका ताण्डव है। वेद यहाँ पर है, सत्यार्थप्रकाश कालजयी ग्रन्थ भी है, पाठकों की भरमार है, आर्यजन हैं, आर्यसमाज हैं, बड़ी-बड़ी संस्थायें हैं, गाँव-गाँव में सभाएँ हैं, आर्यसमाज का जय-जयकार चौबीसों घंटे होता है, ओ३म् ध्वज आकाश चूमता है, पर जैसे मोर नाचते-नाचते पैरों को देखता है तो नाच बन्द करके विचारों में खो जाता है। यहाँ भी यही हाल है। मजबूत स्तम्भ 'आर्यसभा' मॉरिशस है। पंख उग आये तो जन्म के आधार पर जाति सभा बनायी गयी। गहलोत, राजपूत सभा, आर्य रविवेद सभा। चेहरे देखकर चुन-चुनकर सभा बनायी गईं।

राजपूत वाले महाराणा प्रताप को अपना इष्ट मानते हैं। जय-जयकार करते उस महान् हस्ती को लेकर कुओं में छलांग लगाते रहते हैं। संसार में फैली उनकी कीर्ति को सिमटा कर कैद करने में लगे हैं, अस्सी किलो का भाला तो हिलाने से रहे।

रविवेद वाले भी वेदों को काँख तले दबाये दौड़ लगाने में लीन हैं, महर्षि दयानन्द को टुकड़ों में बाँटना चाहते हैं। जन्मना और कर्मणा का सही अर्थ ही समझ नहीं पा रहे हैं। इसके अलावा वैश्य मूवमेंट वाले भी अपना संगठन कंधे पे लादे दौड़ लगा रहे हैं।

ब्राह्मण महासभा तो पहले से ही जन्मना का झण्डा उड़ाये जा रही है। काला अक्षर भैंस बराबर वाले ब्राह्मण भी सर उठाकर चल रहे हैं, मॉरिशस रूपी छोटा टापू टुकड़ों में बंटेगा तो हम हिन्दुओं के हाथ में क्या आयेगा। गुडिया पर्वत भी गंगा तालाब में डूब जायेगा।

यह बखेड़ा धार्मिक मंच पर ही आकर क्यों खड़ा हो जाता है। रास्ते पर सभी चलते हैं। एक नल का पानी पीते हैं। बिजली का तार एक ही है, जो सभी को बिजली प्रदान करता है। फोन की घंटी बराबर बजती है। कोई विशेष प्रबन्ध नहीं है। अस्पताल में मरीज पड़ा है। रक्तदान होता है। किस प्राणी का रक्त है, हब्शी, मुसलमान, क्रिश्चयन या कोई और? वहाँ यह भेदभाव क्यों नहीं?

भारत से स्वामी लोग भी आते हैं, इस जाति-सभा के चक्रव्यूह में फँस जाते हैं। राजपूत में जाते हैं, रविवेद जाते हैं, आर्यसमाजों में जाते हैं। उपदेश देते हैं। पात्र फूटा या मैला ही क्यों न हो, उसी में प्रसाद डाल जाते हैं। मानवता की जगह दानवता का प्रचार कर रहे हैं। मानवता के साथ मानव को भी नष्ट कर रहे हैं। वेद, दयानन्द, आर्य, आर्यसमाज सभी को दाँव पर लगा रहे हैं।

सोनालाल नेमधारी, मॉरिशस

३. माननीय सम्पादक जी!

दो माह पूर्व मैं आर्य लेखक परिषद् बैठक में भाग लेने के लिए दिल्ली गया था। उस बैठक में भोपाल से आदित्य मुनि वानप्रस्थ भी आये थे। वे अपने साथ 'आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की वास्तविक जन्मतिथि' शीर्षक वाली पुस्तक की कई प्रतियाँ लेखकों में वितरण करने हेतु लाये थे।

पुस्तक के अन्तिम पृष्ठ पर छपा है 'ओ३म्। हो गया। हो गया। हो गया। महर्षि दयानन्द की जन्मतिथि का यथातथ्य सत्यनिर्धारण।'

मैंने उनसे कहा कि स्वामी जी की जन्मतिथि १२ फरवरी १८२५ ई. है ऐसा निर्णय सार्वदेशिक आर्य महासभा अपनी बैठक २९ अप्रैल १९५६ को ही स्वीकार कर चुकी है। अब आप इस मामले को व्यर्थ क्यों उठाते हो, तो उन्होंने चुप्पी साध ली।

उनके अनुसार महर्षि की जो जन्मकुण्डली उनके पारिवारिकजनों से मिली है, उसके अनुसार महर्षि की जन्मतिथि भाद्रपद शुक्ल नवमी ही है। तदनुसार उनकी जन्मतिथि १९ सितम्बर १९२५ ही है।

वास्तव में यह सम्पूर्ण विवरण असत्य है। ऋषि के परिवार में उनकी छोटी बहिन प्रेम बा के अतिरिक्त दूसरा कोई रिश्तेदार नहीं था। फिर विवाह होने पर वह अपने ससुराल चली गई। जाते समय अपने भाई की जन्म कुण्डली तो लेकर गई नहीं होगी। कोई भी बहिन अपने ससुराल जाते समय भाई की जन्मपत्री साथ नहीं ले जाती है। माता-पिता की मृत्यु के उपरान्त जब वह अपने पैतृक घर में आई तब भी भाई की जन्मकुण्डली की वह तलाश क्यों करती? उसके बाद उसके पौत्र पोपटलाल ने स्वामी जी के विषय में अपनी दादी से कुछ सुना वह उसने वर्णन कर दिया। यदि इस समय तक भी उनकी कुण्डली होती तो उसका कागज नष्ट हो गया होगा। सामान्यतया कागज पर लिखा हुआ विवरण ५० वर्ष बाद पढ़ने योग्य नहीं रहता और इधर तो सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे।

असत्य वस्तुओं के मूल में जो असत्य होता है वह शीघ्र ही प्रकट हो जाता है। इस जन्मकुण्डली का असत्य इस प्रकार व्यक्त हुआ है। स्वामी जी ने अपना जन्मवर्ष १८८१ वि. बताया है।

आदित्य मुनि का कहना है कि गुजरात का विक्रम संवत् कार्तिक मास में प्रारम्भ हो जाता है जबकि उत्तर भारत में यह चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को प्रारम्भ होता है, मैं भी इसका समर्थन करता हूँ। इससे गुजराती संवत् कार्तिक मास में ही १८८२ में लग जाता है जबकि उत्तर भारत में चैत्री विक्रम संवत् चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को १८८२ में प्रवेश करेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि कार्त्तिक मास से चैत्र शुक्ला प्रतिपदा तक गुजराती संवत् तो १८८२ रहा, परन्तु विक्रम संवत् १८८१ ही रहा। शेष समय अर्थात् चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से कार्तिक मास तक तो दोनों संवत् १८८१ ही बतावेगें। इस समय विक्रम संवत् और ईस्वी संवत् में ५७ वर्ष का अन्तर रहेगा। अर्थात् भाद्रपद शुक्ल नवमी १८८१ विक्रम संवत् है तो इसकी संवत् १८८१-५७=१८२४ होगा। जबकि लेखक ने माना है कि स्वामी दयानन्द का जन्म भाद्रपद शुक्ल ९ संवत् १८८१ (गुजराती) को हुआ। इस दिन तो चैत्री संवत् भी १८८१ ही होगा। संवत् का परिवर्तन तो कार्त्तिक मास में होगा। फिर लेखक कहता है कि यह तिथि ईस्वी सन् में २० सितम्बर १८२५ है, जो नितान्त असत्य है। भाद्रपद शुक्ल ९ संवत् १८८१ (गुजराती) में भी ईस्वी सन् १८२४ ही होगा। फिर आपकी यह जन्मकुण्डली जो २० सितम्बर १८२५ मानकर बनाई गई है कैसे सत्य हो सकती है। २० सितम्बर १८२५ में गुजराती संवत् १८८२ होगा १८८१ नहीं होगा। फिर स्वामी जी ने अपना जन्म वर्ष १८८१ वि. (गुजराती) बताया है जो ईस्वी सन् १८२४ होता है। हाँ, यदि स्वामी जी का जन्म फाल्गुन शुक्ला को हुआ है तो जन्मतिथि १२ फरवरी १८२५ होगी। सार्वदेशिक सभा ने सब तरह से विचार करके ही इस तिथि को स्वीकार किया है।

शिवनारायण उपाध्याय
७३, शास्त्रीनगर, दादाबाड़ी,
कोटा-३२४००१ (राज.)

सब व्यवहार करने वालों को चाहिये कि जो मनुष्य जिस काम में चतुर हो उसको उसी काम में प्रवृत्त करें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.२०

'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ५ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती है, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। इस पुस्तक की छपाई में एक प्रति का खर्च लगभग १०० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १०० आदि।**

१०० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	२१००/- रु.
	३० प्रतियाँ	३१००/- रु.
	५० प्रतियाँ	५१००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	११०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

IFSC - IBKL0000091

२. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।

IFSC - SBIN0007959

आर्यसमाज का धौलपुर सत्याग्रह १९१८

वेदारीलाल आर्य

महर्षि दयानन्द की दिव्यदृष्टि ने देखा था कि राजपूताने में सभी रियासतों में राजधर्म वही था जो कि राजाओं का स्वयं का धर्म था। यही कारण था कि महर्षि ने अपने जीवन का एक महत्त्वपूर्ण समय इसी प्रदेश में बिताया। उनका विचार था कि यदि इस प्रदेश के राजाओं को वे वैदिक धर्म का मर्म समझा सके तो वहाँ की प्रजा स्वत: वैदिक धर्मावलम्बी हो जायेगी। इसी उद्देश्य को लेकर उन्होंने यहाँ की जनता को भी आर्यसमाजों की स्थापना हेतु प्रेरित किया।

इसी क्रम में सन् १८८० में बाबू यमुनाप्रसाद वर्मा के द्वारा धौलपुर में आर्यसमाज की स्थापना हुई, परन्तु आर्यसमाज की राष्ट्रीय गतिविधियाँ अंग्रेजों की आँखों में खटकने लगीं। कारण स्पष्ट था कि वे आर्यसमाज के विस्तार को अपनी राज्य करने की महत्त्वाकांक्षा के लिए घातक मानने लगे।

अत: अंग्रेजों की प्रेरणास्वरूप धौलपुर राज्य के राजा उदयभानु और उनके काजी अजीउद्दीन अहमद ने आर्यसमाज को समाप्त करने की योजना प्रारम्भ की। सन् १९१५ के प्रारम्भ में आर्य प्रतिनिधि सभा राजपूताना के पास रिपोर्ट पहुँची कि धौलपुर राज्य की ओर से धौलपुर आर्यसमाज मन्दिर में, आर्यसमाज के अधिवेशन बन्द कर दिये गये हैं।

इस पर सभा ने २६ अप्रैल के अधिवेशन में निश्चय किया कि सभा के मन्त्री पत्र द्वारा विषय का अनुसन्धान कर महाराणा धौलपुर से प्रार्थना करें कि वे कृपा कर आर्यसमाज को शीघ्र ही अपने अपने अधिवेशन करने तथा प्रचार कर कार्य करने की आज्ञा दें। यदि इस पर कार्य सिद्ध न हो तो प्रधान जी (बाबू गौरीशंकर जी बैरिस्टर) स्वयं वहाँ जायें और आर्यसमाज के पदाधिकारियों से मिलकर प्रयत्न करें। इसके अतिरिक्त आवश्यकता के अनुसार एक शिष्टमण्डल भेजने का भी प्रयत्न किया जाय।

इस सम्बन्ध में आगे जो कार्यवाही हुई उसका विवरण सन् १९१८ ई. की सभा की वार्षिक रिपोर्ट से उद्धृत है–

''सन् १९१७ ई. में सभा की ओर से महाराज राजा धौलपुर की सेवा में धौलपुर समाज मन्दिर भूमि के लिए डेपूटेशन पहुँचा था, उस पर उक्त राजा साहब महोदय ने यह स्वीकार किया कि जो भूमि समाज की अवशेष है वह तथा उसके समीप में जो भूमि है, उसमें से समाज की काम में आई हुई भूमि के बदले में भूमि समाज को दे दी जायेगी। पर बजाय अपने वायदे को पूर्ण करने के जो शेष भूमि समाज की रही थी, उस पर भी अपना कब्जा कर लिया और मकानात राज्य की तरफ से बनाये जाने लगे। यहाँ तक कि हवनकुण्ड के स्थान पर फूस की टट्टी का पाखाना बनाया गया। ऐसी रिपोर्ट धौलपुर समाज से आने पर इस समाज के क्लर्क बाबू मोती लाल जी शर्मा को देखने के लिए भेजा गया। उनकी रिपोर्ट से मालूम हुआ कि वास्तव में **पाखाना** बनाया गया है। इस पर समाचार पत्रों में घोर आन्दोलन हुआ और सत्याग्रह के लिए सभा को आर्य पब्लिक ने मजबूर किया। सभा की ओर से इस भूमि के विषय में समाचार पत्रों में सब हाल प्रकाशित किया गया। इस पर और भी घोर आन्दोलन समाचार पत्रों में उठा। कई एक स्वार्थ त्यागी, वैदिक धर्म के हितैषी इस घोर अन्याय को जानकर अपनी-अपनी वसीयत करके अपना जीवन इस वैदिक धर्म के कार्य में न्यौछावर करने के लिए धौलपुर पहुँचे और सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ। इस प्रसंग में मुन्शी नारायण प्रसाद जी (श्री नारायण स्वामी जी) भी शामिल थे। उन पर पत्थर भी फेंके गये थे और उनको चोट भी आई थी। इस कार्य में सबसे प्रथम भाग आगरे के नाथमल जी, तारादास जी वकील अधिष्ठाता आर्य भास्कर प्रेस ने लिया। लगातार सत्याग्रह का कार्य चलने पर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज भी उस अवसर पर पहुंचे और वायसराय व महाराज धौलपुर को सत्याग्रह के सम्बन्ध में सूचना कर दी। इस पर स्वामी जी महाराज को राना साहब ने कंडाघाट बुलाया और यथोचित फैसला करने का वायदा किया। सभा को उक्त स्वामी जी ने ता. २५-०८-१९१८ को कंडाघाट पहुँचने की सूचना दी। उसके

अनुसार श्रीमती सभा के प्रधान रावराजा तेजसिंह जी ने धौलपुर, को मन्त्री सभा ने सूचना दी कि मैं और स्वामी श्रद्धानन्द जी ता. २५.०८.१९१८ को कंडाघाट पहुँचेंगे। आप भी अवश्य पहुँचें। श्रीमान् राव राजा जी हुकुमसिंह जी तथा मन्त्री सभा उपरोक्त तिथि को कंडाघाट पहुँचे। पहुँचने पर यह मालूम हुआ कि स्वा. श्रद्धानन्द जी महाराज २४.०८.१९१८ को ही महाराजा राजा साहब से फैसला करके लौट गये हैं। सत्याग्रही आर्य सभ्य इनके फैसले से असन्तुष्ट रहे पर आर्यसमाज धौलपुर के सभ्यों ने उक्त स्वामी जी के फैसले को स्वीकार किया। अत: सभा ने भी ऐसी हालत में स्वीकार करना ही उचित समझा।''

उस फैसले की मुख्य बातें यह थीं कि ''जो भूमि स्टेट बैंक के हाथ में आ गई है, वह उसी के हाथ में रहेगी, आर्यसमाज को वापस नहीं की जायेगी। जमीन के जिस टुकड़े पर हवनकुण्ड बनाया है, उसे बन्द कर दिया जायेगा और किसी अन्य काम में नहीं लाया जायेगा। यहाँ आर्यसमाजी तीन दिन का हवन कर सकेंगे। उसकी चाबी आर्यसमाज के मन्त्री के पास रहेगी, परन्तु वह उसे काम में नहीं ला सकेंगे। कॉटन फैक्ट्री रोड पर १००×१०५ फीट का एक टुकड़ा आर्यसमाज मन्दिर के लिये दिया जायेगा। उस टुकड़े का चुनाव स्वामी श्रद्धानन्द जी और जुडिशियल सैक्रेट्री मिलकर करेंगे।''

इस फैसले के अनुसार उस स्थान पर हवन प्रारम्भ हुआ। उस समय जो कुछ हुआ वह हम सभा की रिपोर्ट से उद्धृत करते हैं-

''हवन प्रारम्भ होते ही समस्त प्रजा को भड़काया गया और हवन समाप्त होने तक आर्यसमाज के सभ्यों के मुकाबले में लड़कों को पत्थर बरसाने के लिए मजबूर किया गया। ताकि आर्यसमाजी उठकर चले जायें। दुकानों पर पहुँचते ही गिरोह का गिरोह जनता का आया और पत्थर बरसाना प्रारम्भ कर दिया। चार-पाँच बार पत्थर बुरी तरह बरसाये गये पर आर्यसमाजिक सभ्य जो उस समय उपस्थित थे, निडर होकर अपने स्थान पर डटे रहे। दो-तीन आर्य पुरुषों को चोटें आई। उस पर काजी जी साहब पधारे और कहने लगे कि मैं आपकी रक्षा यहाँ नहीं कर सकता आप डाकबँगले पर जावें, मैं गाड़ियाँ भेजता हूँ। गाड़ियों द्वारा हम सब डाकबँगले पहुंचाये गये। दिखावटी पुलिस का प्रबन्ध था, पर पुलिस और पल्टन के लोग जो प्रबन्ध कर रहे थे, स्वयं आँख चुराकर पत्थर फेंकते थे। डाकबँगले पर भोजनादि का कुछ भी प्रबन्ध नहीं था और ना ही बाजार से मिलता था। बड़ी कठिनाई से यहाँ के स्टेशनमास्टर से कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध किया। इस पर स्वामी जी महाराज ने पॉलिटिकल एजेन्ट और महाराज को इस आशय का पत्र लिखा कि २७ अगस्त १९१८ की घटना की जाँच करने के लिए कमीशन बिठाया जाय और उसकी रिपोर्ट आने पर जो वायदा किया गया है, उसे पूरा किया जाय। महाराणा उन दिनों पहाड़ पर गये हुए थे। इस कारण बहुत देर तक मामला लटकता रहा। अन्त में जो निश्चय हुआ उसमें आर्यसमाज का हाथ ऊँचा रहा। धौलपुर में न केवल आर्यसमाज मन्दिर बन गया, रियासत अथवा वहाँ की जनता की ओर से विरोध भी बन्द हो गया।''

५८१, हाता प्यारेलाल, नगरा-झाँसी-२८४००३

ऋषि दयानन्द ने कहा था

विद्वान् एकमत हो प्रीति से वर्तें

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़, सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक-दूसरे के विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्तें-वर्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों (साधारण जनों) में विरोध बढ़कर अनेकविध दु:ख की वृद्धि और सुख की हानि होती है।

(स. प्र. भू.)

वैदिक पुस्तकालय अजमेर
द्वारा प्रकाशित नये संस्करण

ईश्वर (वैज्ञानिकों की दृष्टि में), प्रस्तुतकर्ता एवं अनुवादक - पं. क्षितीश कुमार वेदालङ्कार

मूल्य -१५० रु., **पृष्ठ** - २६४

दुनिया में दो तरह के मनुष्य पाये जाते हैं, एक वो जो भगवान् को अर्थात् उसके अस्तित्व को स्वीकार करते हैं और दूसरे वे जो भगवान् जैसी किसी सत्ता पर भरोसा नहीं करते। पहले को आस्तिक और दूसरे को नास्तिक कहा जाता है। नास्तिकों के अपने तर्क हैं और इन तर्कों में वे प्राय: वैज्ञानिक प्रयोगों, आविष्कारों, विज्ञान की प्रगति की दलीलों का ही हवाला देते हैं। विज्ञान है तो बहुत अच्छी चीज़, पर अगर कहीं किसी वैज्ञानिक की चूक से कुछ गलत निष्कर्ष आ जाये तो उसे आंखें बन्द करके मान लिया जाता है। आखिर वैज्ञानिक भी तो मनुष्य ही है, गलती तो वह भी करता ही है। इस तरह एक नये प्रकार का अन्धविश्वास 'वैज्ञानिक अन्धविश्वास' जन्म लेता है और दो अन्धविश्वास आपस में टकरा जाते हैं। जो भगवान् को नहीं मानता, वह भी सोचना नहीं चाहता, केवल दूसरों के भरोसे चलता है और जो मानता है, उसने भी अपना दिमाग बाबाओं के पल्ले बाँध रखा है। इन दोनों से अलग कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपने मस्तिष्क को थोड़ा मेहनत करने देते हैं और सत्य तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। ऐसे ही कुछ वैज्ञानिकों के विचारों को इस पुस्तक में संकलित किया गया है। जरूरी नहीं कि ये सभी वैज्ञानिक भगवान् को स्वीकार करते ही हों, पर वह इतना तो स्वीकार करते ही हैं कि कुछ तो है जो विज्ञान की पकड़ से बाहर है। उनकी इसी 'ना' में शायद 'हाँ' छिपी है, बस अन्तर इतना ही है कि उनकी वह खोज बिना नाम वाली है और वेद ने उसको नाम दे दिया है- 'ईश्वर'।

त्रैतवाद- लेखक-विद्यामार्तण्ड पंडित बुद्धदेव विद्यालङ्कार

मूल्य-२० रु., **पृष्ठ** -४०

परिचय- पं. बुद्धदेव जी एक बार अपने आर्य मित्र के पास मिलने गये। उन्होंने देखा कि मित्र का बड़ा बेटा कम्युनिस्ट विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित है। कारण यह कि वह देश-विदेश में घूमकर आया है और किताबें भी कम्युनिज़्म की ही पढ़ता है। पंडित जी ने वह पुस्तक मांगी, जिससे कम्युनिज़म का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। उस पुस्तक का नाम था The Origin of life on the Earth, जिसका विषय था, 'पृथ्वी पर पहली बार जीवन कैसे आया?' बुद्धदेव जी ने इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़कर इसकी समीक्षा की और उस समीक्षा की एक पुस्तक बन गई- त्रैतवाद।

आख्यातिक- लेखक- महर्षि दयानन्द सरस्वती

मूल्य- २५० रु. , **पृष्ठ** - ६०८

परिचय- महर्षि दयानन्द सरस्वती आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन पर बहुत बल देते थे। विशेषकर व्याकरण पर, जो कि सब शास्त्रों की कुंजी है। संस्कृत व्याकरण को सरल एवं सुगम बनाने के लिये उन्होंने पाणिनीय व्याकरण के सहायक ग्रन्थों के रूप में 'वेदांग प्रकाश' नाम से १४ पुस्तकें लिखीं। उनमें से आठवाँ भाग यह 'आख्यातिक' है। इसमें मूलत: धातु पाठ की व्याख्या है। साथ ही उन धातुओं के रूप निर्माण की प्रक्रिया को भी समझाया गया है।

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

कोरी कल्पना है- 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' - २

-रामनिवास 'गुणग्राहक'

पिछले अंक का शेष भाग...

अब तनिक '**एकोऽहं बहुस्याम**' के निहितार्थों पर भी एक दृष्टि डालकर देख लें। हमने थोड़ी देर के लिए मान लिया कि संसार बनने से पहले एकमात्र ब्रह्म ही था, उसी ने बहुत होने की कामना की और जीव तथा जगत् के रूप में वह बहुत हो गया। यहाँ एक स्वाभाविक प्रश्न खड़ा होता है कि जीव और जगत् के रूप में बहुत होकर ब्रह्म में गुण व स्वरूप की दृष्टि से उत्कृष्टता आई या निकृष्टता? वह ब्रह्म जीव और जगत् बनकर श्रेष्ठ हुआ या अश्रेष्ठ? पवित्र हुआ या अपवित्र? सशक्त हुआ या अशक्त? इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए किसी बुद्धिमान् से कहा जाए तो बिना कोई देर किये उसका उत्तर होगा कि सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, पूर्ण पवित्र, नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त परमात्मा में, जैसा वह है उससे अधिक उत्कृष्ट होने की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती। हम अधिक गम्भीरता में भी न जाएँ तो सरलता से कह सकते हैं कि जीव बनकर वह एकदेशी व अल्पज्ञ हो गया तथा जगत् बनकर वह चेतनाशून्य जड़ बन गया तो यह उसके लिए श्रेष्ठ व उत्तम स्थिति तो नहीं कही जा सकती।

माना कि कुछ दुराग्रही यह कहने का भी साहस करें कि एक से बहुत होना तो विकास, उन्नति और वृद्धिकारक ही माना जाता है। ऐसे लोगों के लिए बहुत बड़ी समस्या खड़ी हो जाएगी। एक अखण्ड, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् पूर्ण ब्रह्म को अल्पज्ञ जीव और जड़ व मिथ्या जगत् में परिणत कराकर अगर कोई गुण-सामर्थ्य की दृष्टि से उत्कृष्ट व अधिक सामर्थ्यवान् घोषित करते हैं तो इसका सीधा सा अर्थ हुआ कि अल्पज्ञता सर्वज्ञता से बड़ी चीज है तथा मिथ्या सत्य से अधिक शक्तिशाली, पवित्र और अधिक मूल्यवान् है। अगर ऐसा ही है तो ब्रह्म को सदा सर्वदा अल्पज्ञता व जड़ता से युक्त ही रहना चाहिए। शुद्ध, सच्चिदानन्द स्वरूप में रहना, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक बने रहना तो घाटे की स्थिति हुई। इन सबसे बड़ा प्रश्न एक विकट समस्या की ओर संकेत करता है कि यदि अल्पज्ञ जीव और चेतनाशून्य मिथ्या जगत् में परिणत हुआ ब्रह्म शुद्ध ब्रह्म से अधिक श्रेष्ठ, सशक्त और उत्कृष्ट बन गया तो वह शुद्ध ब्रह्म के नियन्त्रण में क्योंकर रहेगा? यह स्थिति तो कल्पनातीत भयावह हो जाएगी। अगर यह मानते हैं कि जीव और जगत् बन चुका ब्रह्म शुद्ध ब्रह्म के नियन्त्रण में ही रहता है तो यह मानना ही पड़ेगा कि अल्पज्ञ जीव और मिथ्या जगत् होकर ब्रह्म अपने पूर्व स्वरूप से निकृष्ट, अश्रेष्ठ, अपवित्र और अशक्त ही हुआ, उसमें गुणवत्ता और शक्तिमत्ता की कमी ही आई।

सब जानते हैं कि जो सच होता है, वह प्रत्येक रूप में हर दृष्टि से सच ही होता है। दूसरी ओर जो झूठ होता है, वह हर दृष्टि और हर रूप में झूठ ही होता है। 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' की कल्पना को जिस दृष्टि से देखो, जिस पक्ष से परखो, झूठ का पुलिन्दा ही सिद्ध होगी। इसमें एक आश्चर्यजनक विसंगति पर अचानक अभी कुछ दिनों पूर्व 'सत्यार्थ प्रकाश' के स्वाध्याय के समय मेरा ध्यान गया। वैसे तो- 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' तथा उसके पोषक वाक्य- 'एकोऽहं बहुस्याम' की नि:सारता, तथ्य व तर्कपूर्ण ढंग से हम कर चुके हैं, लेकिन व्यावहारिक स्तर पर विचार करें तो- 'एकोऽहं बहुस्याम' वाक्य अव्यावहारिक प्रतीत होता है। देखा यह जाता है कि संसार का प्रत्येक मनुष्य आज जिस स्थिति में है, उससे आगे बढ़ने वा ऊँचा उठने का ही प्रयास करता है। ज्ञान, शक्ति व गुण सम्बन्धी उत्कृष्टता को पाने के प्रयास में संसार का प्रत्येक व्यक्ति निरन्तर लगा रहता है। यह एक अलग बात है कि वह अज्ञानतावश या काम-क्रोध, लोभ-मोह व राग-द्वेष जैसे भावावेश के प्रवाह में पड़कर पतनगामी प्रवृत्तियों का शिकार होकर उन्नति के स्थान पर अवनति के गड्ढे में गिरता हुआ देखा गया है। आश्चर्य इस बात का है कि ज्ञान-बल व सामर्थ्य की दृष्टि से पूर्ण होने पर भी पूर्णकाम ब्रह्म भला अल्पज्ञ जीव और जड़ जगत् होने की इच्छा क्यों करता है? उसके लिए क्या अप्राप्त है या यूँ कहें कि उसके अतिरिक्त जब कुछ है ही नहीं तो वह बहुत होने के नाम पर अल्पज्ञ जीव और मिथ्या-जड़ जगत् होने की अव्यावहारिक इच्छा क्यों करता है? अल्पज्ञ जीव बनकर

उसमें यह सद्बुद्धि कैसे आ जाती है कि एक छोटा सा अधिकारी बनने के बाद वह चपरासी बनने की इच्छा नहीं करता, प्रत्युत बड़ा अधिकारी बनने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा देता है। कितने दु:ख और दुर्भाग्य की बात है कि स्वार्थ के पचड़े में पड़कर पण्डित कहलवाने वालों ने सब सद्गुणों में सदा सर्वोपरि ब्रह्म को अल्पज्ञ, अल्पसामर्थ्य वाला जीव और मिथ्या जड़ जगत् बनने की इच्छा करने वाला बताकर सामान्य अल्पज्ञ मानव से भी निम्न स्तर का बना डाला। कितनी अटपटी कल्पना और चटपटी गप्प है कि सत्यकाम, सत्य स्वभाव एवं पूर्णकाम ब्रह्म अल्पज्ञ-अल्प सामर्थ्य वाला जीव और मिथ्या व जड़ जगत् बनने की कामना करता है और बन जाता है। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार-

'वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित्।
न अकार्यमस्ति क्रुद्धस्य न अवाच्यं विद्यते क्वचित्।।'

सुन्दरकाण्ड १६.५

अर्थात् क्रोधी व्यक्ति को यह विवेक नहीं रहता कि क्या कहना है, क्या नहीं कहना। क्रोधी के लिए न करने योग्य तथा न बोलने योग्य कुछ भी नहीं रहता, यानि क्रोधी व्यक्ति कुछ भी कर सकता है और कुछ भी कह सकता है। महर्षि वाल्मीकि का यह कथन एकदम सत्य और सटीक है, लेकिन लगता है लालच और स्वार्थ में अन्धा (विवेकशून्य) होकर विद्याविलासी व्यक्ति भी पागलों के समान प्रलाप करते हुए वह भी कर सकता है जो क्रोधी नहीं कर सकता। चाहे कोई कितना ही क्रोधावेश में हो वह उस आवेश में इतना मूर्खतापूर्ण लेखन नहीं कर सकता।

'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' का नारा लगाने वालों से एक प्रश्न और पूछने की अभी-अभी (लिखते समय ही) इच्छा हुई है। समस्त वैदिक साहित्य और आर्ष ग्रन्थों में इस सृष्टि को प्रवाह से अनादि स्वीकार किया है, अर्थात् सृष्टि का बनना और इसका प्रलय होना प्रवाह से अनादि है। इसके बनने से पूर्व प्रलय थी और इसके बाद प्रलय होगी। उस प्रलय के बाद पुन: सृष्टि होगी और उस सृष्टि के बाद पुन: प्रलय। इस सृष्टि के बनने और प्रलय होने का न तो पूर्वकाल में कोई अन्तिम सिरा मिलता है और न आगे के लिए यह कहा जा सकता है कि १०-२० या ५०-१०० अथवा करोड़ों बार सृष्टि बनने के बाद सृष्टि बनने व प्रलय होने का क्रम रुक जाएगा। कुल मिलाकर इसके बारे में यही कहा जाता है कि पीछे से अनादि काल से सृष्टि बनने और प्रलय होने का क्रम चला आ रहा है और आगे अनन्तकाल तक यह चलता रहेगा। यह सत्य सिद्धान्त वेद और वैदिक साहित्य से जुड़े हुए सब लोग मानते हैं। यह मान लेने पर- 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' कहने वालों के सामने प्रश्न खड़ा होता है कि क्या ब्रह्म प्रत्येक कल्प में सृष्टि रचना के लिए- 'एकोऽहं बहु स्याम' वाला तरीका अपनाता है या इस कल्प में ही यह नया प्रयोग किया है? वेद तो यह घोषणा करता है कि परमात्मा ने जैसे पूर्व कल्पों में सृष्टि- सूर्य, चन्द्र, विद्युत, पृथ्वी और अन्तरिक्ष आदि की रचना की थी, वैसी ही रचना इस कल्प में की है और आगे के कल्पों में भी ऐसी ही रचना करेगा। **(सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्**- ऋ-१०.१९०.३)। इस वेद वचन के आलोक में- 'एकोऽहं बहु स्याम' को देखें तो मानना पड़ेगा कि ब्रह्म प्रत्येक सृष्टि को बनाने से पहले ऐसा ही करता होगा। 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' के साथ- 'एकोऽहं बहु स्याम' की सत्यता तो पाठक पिछले पृष्ठों में देख ही चुके हैं कि यह शंकरवादियों का एक मिथ्या प्रपञ्च है, कोरी कपोल कल्पना है। शंकराचार्य से पूर्व किसी ऋषि-महर्षि ने इसकी चर्चा तक नहीं की।

इन सबसे हटकर हम इसकी भी जाँच-पड़ताल कर लें कि क्या प्रत्येक सृष्टि से पूर्व - 'एकोऽहं बहु स्याम' की बात सृष्टि निर्माण-प्रक्रिया के साथ मेल खा सकती है या नहीं? 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' और 'एकोऽहं बहु स्याम' को सत्य मानने का अर्थ होगा कि सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्म अपने में से ही जीव और जगत् को उत्पन्न करता है और प्रलय काल में जीव और जगत् पुन: ब्रह्म में अपना नाम-रूप खोकर एकाकार हो जाते हैं, अर्थात् पुन: ब्रह्म बन जाते हैं। प्रलय होने पर सब ब्रह्म रूप हो जाता है, शुद्ध और पूर्ण ब्रह्म, पुन: सृष्टि रचते समय 'एकोऽहं बहु स्याम' की कामना करता है और अपने शुद्ध ब्रह्म स्वरूप में से पुन: अल्पज्ञ जीव और मिथ्या जड़ जगत् की रचना कर डालता है। अगर प्रलय काल में जीव और जगत् सब शुद्ध ब्रह्म नहीं होंगे तो अगली सृष्टि रचना के समय- 'एकोऽहं बहु स्याम' वाली बात नहीं बन सकेगी। ऐसे में कई बड़े-बड़े प्रश्न उत्तर माँगने लगते हैं। सबसे बड़ा प्रश्न तो कर्मफल व्यवस्था को लेकर खड़ा होता है कि जिन्होंने

तप-साधना और योगाभ्यास के द्वारा मुक्तिपद प्राप्त किया है उसका परान्त काल तक भोग कैसे सम्भव होगा? शास्त्र बताते हैं कि छत्तीस हजार बार सृष्टि और प्रलय होने के काल को परान्त काल कहते हैं और मुक्ति में जीव इतने काल तक आनन्द भोगता है। सुधी पाठक गणना करके देखना चाहें तो एक सृष्टि की आयु चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष है और इतनी ही प्रलय मानी गई है। इस प्रकार आठ अरब चौसठ करोड़ को छत्तीस हजार से गुणा करें तो परान्त काल निकल आता है, इतने काल तक जीव मुक्ति का आनन्द भोगता है। कुछ महानुभाव आग्रह करें कि मुक्ति में जीव का ब्रह्म में लय हो जाता है, वह ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त हो जाता है तो उनकी सेवा में वेदान्त दर्शन का एक सूत्र- **'भोगमात्र साम्य लिङ्गाच्च'** (४.४.२१) प्रस्तुत करना चाहते हैं। यह सूत्र बता रहा है कि मुक्ति में जीवात्मा और परमात्मा एकमात्र आनन्द प्राप्ति में समान रहते हैं, अर्थात् परमात्मा सदा सर्वदा जिस आनन्द में रहता है, जो उसका स्वाभाविक आनन्द है मुक्त जीव परमात्मा के आश्रय में रहता हुआ, उस आनन्द-भोग में परमात्मा के साथ साम्यता रखता है, शेष गुण-सामर्थ्य की दृष्टि से वह आत्मरूप सत्ता में ही रहता है, ऐसा महर्षि व्यास जी का मानना है। सरल शब्दों में कहें तो ज्ञान की दृष्टि से आत्मा परमात्मा की तरह सर्वज्ञ नहीं हो सकता, शक्ति की दृष्टि से सर्वशक्तिमान नहीं हो सकता और स्वरूप की दृष्टि से वह एकदेशी ही है कभी सर्वव्यापक नहीं हो सकता। इस प्रकार बात चाहे मुक्तात्मा की हो या जन्म-मरण के बन्धन में बँधे जीवात्मा की इनमें से कभी कोई भी परमात्मा में लय नहीं होता, सदा-सर्वदा अपने अस्तित्व में बना रहता है।

न्याय दर्शनकार महर्षि गौतम भी इसकी पुष्टि कर रहे हैं- वे लिखते हैं- **'पूर्वकृत फलानुबन्धात् तदुत्पत्तिः'** (३.२.६२) अर्थात् जैसे पूर्वजन्म के कर्म और उनके फलों से बँधे हुए जीव अगला जन्म प्राप्त करते हैं, ठीक उसी प्रकार पूर्व सृष्टि के अन्त में जिन जीवों के जैसे कर्म थे, उन कर्मों के फलों से बँधे हुए जीवात्माओं को फल प्रदान करने के लिए ही आगामी सृष्टि का सृजन होता है। यह न्याय की बात भी है, अगर किसी जीवात्मा के किये गये कर्मों का फल न मिला तो न्याय की भाषा में इसे 'कृतहानि' दोष कहते हैं। इसी प्रकार बिना कर्म किये किसी को सुख या दुःख की प्राप्ति होती है तो इसे 'अकृतागम' दोष मानते हैं। हमने कर्म तो किया मगर उसका फल न मिला तो न्याय नष्ट हो गया, किसी के किये की हानि हो गई। इसमें मानव की अज्ञानता के कारण एक पेच और फँस जाता है, उसे अपने पाप-कर्मों के फल न मिले तो बड़ी प्रसन्नता का अनुभव करता है। पाप-कर्मों के फल से बचने के लिए मूर्खतापूर्ण प्रयत्न भी करता है, लेकिन अगर उसके एक भी पुण्य कर्म का फल न मिले तो न्याय-व्यवस्था पर सौ लांछन लगाता है। ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या मानने वालों के साहित्य में तो ऐसी असंख्य कल्पित किस्से घटनाओं के रूप में अंकित हैं जिनमें इनके भगवान और देवता निरपराधी को दण्ड या श्राप देते फिरते हैं और जीवन भर के अपराधी को किसी छोटे से अच्छे काम व तिलक आदि चिह्न के कारण स्वर्ग का टिकिट दे देते हैं। परमात्मा की दृष्टि में चाहे किसी के पुण्य कर्म हों, चाहे पाप कर्म, सब कर्मों के फल निश्चित रूप से मिलते रहने में ही परमात्मा की न्याय-व्यवस्था की पूर्ण सफलता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि परमात्मा के सब कार्य पूर्ण ही होते हैं, उसकी न्याय-व्यवस्था भी सदा पूर्ण ही रहती है। अगर हम ये मान लें कि हर सृष्टि में नहीं बल्कि एक ही किसी विशेष सृष्टि में एक ही बार ब्रह्म ने 'एकोऽहं बहुस्याम' के अनुसार निजस्वरूप में से जीव और जगत् की रचना की थी। उस रचना के बाद शेष जितनी सृष्टि रचना व प्रलय का क्रम चल रहा है, वह जीवों के कर्मों के अनुसार फल देने के नियम से चल रहा है। ऐसा कहने वालों को सर्वप्रथम तो यह बताना पड़ेगा कि वर्तमान सृष्टि से कितनी सृष्टियाँ पूर्व ब्रह्म ने ऐसा (एकोऽहं बहुस्याम) किया था? दूसरी बात प्रथम बार जब जीवों को बनाया तो उनके प्रथम जन्म के योनि विभाजन का न्याययुक्त आधार क्या था? अर्थात् पहली बार जब अपने स्वरूप से जीव बनाये तब उनमें से किसी को मानव का शरीर तो किसी को पशु-पक्षी, कृमि, कीट-पतंग आदि का जन्म किस आधार पर दिया? सबसे बड़ी बात यह है कि वेद में परमात्मा ने - **'यथापूर्वमकल्पयत्'** का ज्ञान दिया है, अर्थात् यह बताया है कि जैसी सृष्टि रचना इस कल्प में की है उससे पूर्व कल्पों में वैसी ही की थी, तथा आगामी कल्पों में भी सृष्टि रचना इसी प्रकार की जाएगी। हम पहले भी लिख चुके हैं कि वेद के बाद महर्षि ब्रह्मा से लेकर महर्षि व्यास व उनके शिष्य आचार्य

जैमिनी तक किसी मान्य ऋषि ने 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' और 'एकोऽहं बहुस्याम' का उल्लेख तक नहीं किया तो बिना प्रमाण बिना आधार और बिना तर्क पूर्ण सिद्धि के कोई विवेकशील पुरुष इस कोरी कल्पना को सच क्यों मान लेगा?

कुल मिलाकर जगत् को मिथ्या, स्वप्न के समान और 'है ही नहीं, केवल भासता है' कहने वालों की किसी भी बात में कोई दम नहीं है। हाँ इनकी इस कोरी कल्पना के विरुद्ध इनके ही मान्य ग्रन्थों में अनेक वचन भरे पड़े हैं। हम केवल गीता की ही बात करें तो श्री कृष्ण कहते हैं- **''नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।''** (२.१६) अर्थात् असत् (जो है ही नहीं) वस्तु की सत्ता (विद्यमानता) नहीं है और सत् (जो वस्तु है उसका) का अभाव (नाश) नहीं होता। इस सिद्धान्त की व्यावहारिक व्याख्या भी गीता में मिलती है। **''न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः। न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्।।''** (२.१२) श्री कृष्ण कहते हैं- हे अर्जुन! न तो ऐसा है कि किसी काल में मैं नहीं था, तू नहीं था, अथवा ये राजा लोग नहीं थे, और न ऐसा है कि इससे आगे भविष्य में कभी हम सब नहीं रहेंगे। यहाँ श्री कृष्ण स्पष्ट घोषणा कर रहे हैं कि जीवात्मा अजर, अमर, अविनाशी है। इसी बात को आगे चलकर बीसवें श्लोक - **'न जायते म्रियते वा कदाचित् नायं भूत्वा भविता वा न भूयः। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।''** में बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है कि यह आत्मा न जन्म लेता (उत्पन्न होता) है, न मरता (नष्ट होता) है। यह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत है, पुरातन है, शरीर के मरने (नष्ट होने) पर यह जीवात्मा नहीं नष्ट होता-नहीं मरता। जीवात्मा के परमात्मा की तरह अजर, अमर, अविनाशी होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या चाहिए। जिन महानुभावों की इससे भी सन्तुष्टि न हो, उनके लिए गीता के पन्द्रहवें अध्याय के श्लोक- **'द्वाविमौ पुरुषौ लोके .....अक्षर उच्यते'**। (१६) तथा- **'उत्तमः पुरुषस्त्वन्य ..... बिभर्ति अव्यय ईश्वरः।।'** (१७) के अर्थ प्रस्तुत हैं- इस संसार में नाशवान और अविनाशी ये दो प्रकार के पुरुष हैं। इनमें सब भूत प्राणियों के शरीर तो नाशवान हैं और जीवात्मा अविनाशी है। इन दोनों से उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर सबका धारण-पोषण करता है। यहाँ स्पष्ट रूप से प्रकृति को नाशवान (परिवर्तनशील) और जीवात्मा-परमात्मा को अविनाशी कहा है। जिसने न मानने की ठान रखी हो, उसके लिए कोई कुछ नहीं कर सकता।

अन्त में हम भलीभाँति विचार और विश्लेषण करके इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' की कल्पना निराधार है, अप्रमाणिक है, अवैज्ञानिक है, अव्यावहारिक है और अतर्कसंगत है। बुद्धिमान, विवेकशील, सत्यनिष्ठ सज्जन इस कल्पना से जितनी जल्दी मुक्त होकर वेद व ऋषियों द्वारा मान्य त्रैतवाद के सत्य सिद्धान्त को स्वीकार कर लें, उतना ही सबके लिए सुखद है। सत्य विद्या और सत्य सिद्धान्तों के प्रति श्रद्धा रखना, इन्हें व्यावहारिक जीवन में स्वीकार करना मनुष्य होने का प्रथम व अन्तिम लक्षण है, कर्त्तव्य है। इसी एक गुण में सारे सद्गुण आ जाते हैं, इसी कर्त्तव्य के पालन में सब कर्त्तव्यों का पालन हो जाता है। अगर हमारे जीवन में सत्यविद्या और सत्य सिद्धान्तों के प्रति श्रद्धा और इन्हें व्यावहारिक जीवन में स्वीकार करने की शक्ति-सामर्थ्य नहीं है तो निश्चित रूप से हमारा जीवन सच्चे सुख और सच्ची शान्ति से सर्वथा शून्य है, आनन्द की तो बात ही क्या। हमारे पास समृद्धि हो सकती है, संसाधन हो सकते हैं, सुविधाएँ हो सकती हैं, लेकिन ये सब मिलकर हमें सच्चा सुख नहीं दे सकते, सच्चा सन्तोष व सच्ची शान्ति नहीं दे सकते। हाँ धन-सम्पत्ति, साधन-सुविधाएँ जुटाकर हमारा अहंकार पुष्ट होता है, उस अहंकार की पुष्टि-तुष्टि को ही हम सुख मान बैठते हैं। सुख का घर तो थोड़ा दूर है, वहाँ सत्य-पथ पर चलकर ही पहुँचा जाता है। आश्चर्य तो इस बात का है झूठ के झंझट में हम जाने-अनजाने में इतने फँस जाते हैं कि परमात्मा के सच्चे स्वरूप को स्वीकारने में भी आनाकानी करने लगते हैं। मेरे हृदय में यह सब लिखने का विचार इसलिए आया कि विद्याहीन, स्वार्थी गुरुओं के गुरुडमवाद में फँसे भोले लोगों के सामने परमात्मा के सच्चे स्वरूप को रखने से वे इसे स्वयं समझने का प्रयास करेंगे तथा जो जगत् को मिथ्या बताकर स्वयं ब्रह्म बन बैठे हैं, उन गुरुओं के सामने इस प्रश्नों को रखकर उनसे उत्तर माँगेंगे। हमने तो ऋषि दयानन्द के उस आदेश को पालन करने का प्रयास किया है, जिसमें उन्होंने कहा था- **''विद्वान्, आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों को सत्य-असत्य का स्वरूप समर्पित कर दें,**

पश्चात् वे स्वयं अपना हित-अहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।'' वे आगे लिखते हैं- ''क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी (कार्य) मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है''।

सुधी पाठक! हम प्रारम्भ में ही यह प्रकट कर चुके हैं कि जगत् को मिथ्या व स्वप्न के समान मानने वाले स्वयं को 'जगत् गुरु' कहलवाकर गौरवान्वित होते हैं। भला झूठ का गुरु होना वा जो है ही नहीं केवल भासता है, उसका गुरु होना किस कोटि का है और कैसा गौरव हो गया? झूठ का गुरु होना तो लज्जा की बात है। जगत् को मिथ्या (झूठ) बताकर जगत् गुरु कहलवाने व कहने वाले थोड़ी सी बुद्धि से काम लें तो सब झूठ में फँसने-फँसाने के पागलपन से सरलता से मुक्त हो सकते हैं। जगत् मिथ्या की कुटिल कल्पना ने हमारे बल-पौरुष व पराक्रम के साथ-साथ हमारी परिश्रम करके राज्य बनाने व बढ़ाने की पुरखों से प्राप्त प्रवृत्ति को भी प्राणहीन बना डाला है। हम कर्मठता को छोड़कर भाग्यवादी बनकर रह गये हैं। सांसारिक उन्नति तथा पारिवारिक, सामाजिक व राष्ट्रीय कर्त्तव्यों के महत्त्व की अनदेखी करके सबको मुक्ति मार्ग के लिए प्रवृत्त करना जीवन के प्रति उचित दृष्टिकोण नहीं कहा जा सकता। आज सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात को समझने और समझाने की है कि हम अपने पारिवारिक, सामाजिक व राष्ट्रीय कर्त्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करते हुए ही परमात्मा की भक्ति-उपासना कर सकते हैं। हमें अपने मन और मस्तिष्क में यह बात मोटे तौर पर चमकदार अक्षरों में लिख लेनी चाहिए कि एक गृहस्थी के लिए प्रातः-सायं ईश्वर की संध्या-उपासना जितनी आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है एक प्रभु-भक्त साधु-संन्यासी के लिए गृहस्थ जनों को सत्योपदेश करते हुए उन्हें व्यावहारिक ज्ञान देकर सांसारिक कर्त्तव्यों में प्रवृत्त करना।

जगत् मिथ्या नहीं है, जगत् परिवर्तनशील है, जगत् सत्य है। गीता में स्वयं योगेश्वर श्री कृष्ण जी का कथन हम देख चुके हैं कि जो वस्तु है, उसका अभाव नहीं होता और जो नहीं है, उसका भाव नहीं होता। जगत् बनने की मूल सामग्री सत्, रज और तम अगर नहीं होती तो जगत् भी नहीं होता। अन्तर केवल इतना है कि परमात्मा और आत्मा अपरिवर्तनशील, अविकारी सत्ता हैं। यह परमपिता परमेश्वर द्वारा वेद के माध्यम से मनुष्यों के लिए दिया गया 'त्रैतवाद' का सत्य सिद्धान्त है। हमारे ऋषियों की बड़ी स्पष्ट मान्यता रही है- **'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः'** अर्थात् परस्पर मिल बैठकर संवाद करते रहने से सत्यतत्त्व का बोध होता है। आत्मा-परमात्मा व प्रकृति के सम्बन्ध में भी तत्त्वज्ञान पाने के लिए प्रश्नोत्तर के रूप में संवाद करते रहने में ही लाभ है। मैं तो एक बात प्रायः कहा करता हूँ कि संसार में कोई भी मनुष्य सर्वज्ञ होने का दावा नहीं कर सकता। कोई नहीं कह सकता कि मैं सब कुछ जानता हूँ। अगर मैं सब कुछ जान लेने का दावा नहीं करता तो मुझे अपने हृदय और मस्तिष्क के सब खिड़की-दरवाजे सदैव खुले रखने चाहिएँ, अर्थात् अधिकतम ज्ञान प्राप्त करने के लिए सदा तैयार रहना चाहिए। ज्ञान-विज्ञान पर कभी किसी का एकाधिकार नहीं माना जा सकता। आज ज्ञान-विज्ञान जिसके भी पास है, वह उसकी बपौती (पिता की सम्पत्ति) नहीं है, उसने भी कभी किसी से कुछ न कुछ सीखा होगा। ऐसे में हमें किसी भी ज्ञानी-विज्ञानी से कुछ भी ज्ञान लेने में स्वयं को छोटा नहीं समझना चाहिए। हाँ जिससे ज्ञान-विज्ञान प्राप्त किया हो उसके प्रति सम्मान के भाव रखना तो बहुत आवश्यक है, लेकिन विनम्रतापूर्वक प्रश्न पूछने में संकोच करना या किसी की बात को बिना सोच-विचार के स्वीकार कर लेना अपनी बौद्धिक दुर्बलता है। एक अच्छा विद्यार्थी एक अच्छे अध्यापक के साथ प्राथमिक विद्यालय से लेकर शिक्षा पूर्ण होने तक प्रश्नोत्तर कर सकता है। हमारा उपनिषद् साहित्य अध्यात्म ज्ञान के सम्बन्ध में गुरु-शिष्य के प्रश्नोत्तर से भरा पड़ा है तो हमारे आज के धर्मगुरु और उनके शिष्य इससे इतना डरते क्यों हैं? सच तो यह है कि जो विषय जितना जटिल, सूक्ष्म और व्यापक है, उसके सीखने-सिखाने में उतने ही अधिक प्रश्नोत्तर की सम्भावना अधिक होती है। जगत् मिथ्या का ढोल पीटने वालों के सामने प्रश्न खड़े किये बिना सत्य को सामने लाना महा कठिन काम है। सत्य को सामने लाने के लिए विनम्रतापूर्वक प्रश्न पूछना कभी किसी भी रूप में गलत नहीं है।

- आर्यसमाज श्रीगंगानगर, राज.

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एकमात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ– प्रवचन, वेद–पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***– आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति निःशुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***– अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्णरूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था निःशुल्क की जाती है। ***गोशाला***– गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का निःशुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***– वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा निःशुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***– इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोधकर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ निःशुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***– योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में निःशुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों में भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी–छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अतः आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अतिथि यज्ञ के होता

(१६ से ३० अगस्त २०१८ तक)

१. श्री हरनारायण चंडक, मुंबई २. श्री विपिन कुमार, दिल्ली ३. श्रीमती संध्या पाल रुड़की ४. डॉ. सत्यदेव सिंह, मथुरा ५. श्रीमती अमिता ठाकुर, बीकानेर ६. मै. स्वस्तिकॉम चेरिटेबिल ट्रस्ट, अमरावती ७. डॉ. ब्रदीप्रसाद पंचोली व श्रीमती कमला देवी पंचोली, अजमेर ८. श्री जयदेव अवस्थी, जोधपुर ९. श्री अनुपम आर्य, अजमेर १०. डॉ. सत्यदेव सिंह, मथुरा ११. श्रीमती तृप्ता वर्मा, नई दिल्ली १२. डॉ. प्रवीण माथुर, अजमेर १३. श्री प्रियव्रत, नई दिल्ली १४. श्रीमती प्रतिमारानी, ऋषि उद्यान, अजमेर।

– परोपकारिणी सभा, अजमेर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गौशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता

(१६ से ३० अगस्त २०१८ तक)

१. श्रीमती रामप्यारी राठी, जावला २. श्री हृदयनाथ चतुर्वेदी, मुंबई ३. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैन्ट ४. श्री मूलचन्द गुप्त, दिल्ली ५. श्री जयदेव अवस्थी, जोधपुर ६. डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली व श्रीमती कमला देवी, अजमेर ७. श्री जेठी बाई, अजमेर ८. श्रीमती रतन देवी लखोटिया, कर्नाटक ९. श्री धर्मवीर रेहानी, अजमेर १०. श्रीमती वीणा शर्मा, अजमेर ११. श्रीमती मञ्जुला व ओमप्रकाश अग्रवाल, उज्जैन।

– परोपकारिणी सभा, अजमेर।

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को स्थान दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अत: सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं।** अत: लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हों। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें।** लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।** स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।

–संपादक

शङ्का समाधान - ३३

डॉ. वेदपाल, मेरठ

शङ्का- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में पृथक्-पृथक् कितने-कितने मन्त्र हैं? सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित ऋग्वेद में १०५५२ के स्थान पर १०५२२ मन्त्र क्यों हैं? आपकी और उनकी ऋग्वेद संहिता में ३० मन्त्रों का अन्तर क्यों है?

वीरेन्द्रकुमार, शास्त्रीनगर, मेरठ।

समाधान- वेद मन्त्रों के ऋषि-देवता-छन्द तथा संहिता के मन्त्रों की संख्या का उल्लेख अनुक्रमणी/अनुक्रम सूत्र आदि ग्रन्थों में उपलब्ध है। इस विषय में शौनक का कथन है-

अथ ऋग्वेदाम्नाये शाकलके सूक्तप्रतीकऋक्संख्यऋषिदैवतच्छन्दांस्यनुक्रमिष्यामो यथोपदेशम्।

-द्रष्टव्य-कात्यायन ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी-१.१

शौनकीय चरणव्यूह के अनुसार ऋग्वेद की पाँच शाखाएँ हैं- १. आश्वलायन, २. शाङ्खायन, ३. शाकल, ४. बाष्कल, ५. माण्डूकायन- **''एतेषां शाखा पञ्चविधा भवन्ति। आश्वलायनी, शाङ्खायनी, शाकला, बाष्कल, माण्डूकायनश्चेति''**-चरणव्यूहसूत्रम्-१.७-८, महाभाष्यकार पतञ्जलि के- **'चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्नाः। एकशतमध्वर्यु- शाखा, सहस्रवर्त्मा सामवेदः, नवधाऽथर्वणो वेदः, एकविंशतिधाबाह्वृच्यम्...'** वचनानुसार ऋग्वेद की इक्कीस शाखाएँ थीं। शाखा भेद के कारण कहीं-कहीं मन्त्र पाठक्रम में भेद है। शौनकीय अनुक्रमणी से ज्ञात होता है कि शाकल एवं बाष्कल शाखाओं के प्रथम मण्डल में मन्त्रक्रम में भिन्नता है। जैसे- **उपप्रयन्तो नासत्याभ्याम्, अग्निं होतारं वेदिषद** यह बाष्कल क्रम है। **उप प्रयन्त, इमं स्तोमं, नासत्याभ्याम्, अग्निं होतारम्** इत्यादि शाकल क्रम है।

शौनकीय अनुवाकानुक्रमणी तथा चरणव्यूह सूत्र के भाष्यकार महीदास ने ऋग्वेद की मन्त्रसंख्या का विस्तृत विवेचन किया है। तद्यथा- शौनक के अनुसार शाकल में १०१७ तथा बाष्कल में १०२५ सूक्त हैं-

एतत्सहस्रं दशसप्त (१०१७) **चैवाष्टावतो बाष्कलेऽधिकानि** (१०२५)-३६

मन्त्रसंख्या- १.१०५८०.१/४-वर्ग विवेचन के पश्चात् शौनक ने मन्त्र संख्या का वर्णन किया है-

ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च।
ऋचामशीतिः पादश्च पारणं संप्रकीर्तितम्।। -४३

अर्थात् ऋग्वेद में दस हजार पाँच सौ अस्सी ऋचाएँ तथा एक पाद है। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि-अध्ययन काल में १०४९६ ऋचाएँ हैं। इनमें नैमित्तिक द्विपदा की सत्तर ऋचाएँ जोड़ने पर यह संख्या १०४९६+७०=१०५६६ दस हजार पाँच सौ छियासठ हो जाती है। इसमें संज्ञान सूक्त की पन्द्रह ऋचाएँ जोड़ने पर यह संख्या १०५६६+१५=१०५८१ होती है। इनमें 'भद्रं नो अपि वातय मनः' ऋ. १०.२०.१ यह एक पाद है। अतः यह संख्या दस हजार पाँच सौ अस्सी मन्त्र एवं एक पाद है। (द्र. महीदास भाष्य, चरणव्यूह पृ. २१)।

यहाँ १०४९६ की गणना इस प्रकार समझनी चाहिए कि ऋग्वेद की ९४ ऋचाएँ तीन-तीन अर्द्धर्चवाली हैं। अध्ययन काल में दो अर्द्धर्च की एक ऋचा तथा एक अर्द्धर्च की एक ऋचा गिनने पर ९४ संख्या बढ़ती है। इसे ऋक् संख्या १०४०२ में जोड़ने पर संख्या १०४०२+९४=१०४९६ हो जाती है। (द्र. महीदास पृ. १९)

२. मन्त्रसंख्या- १०५५२-ऋग्वेद में बालखिल्य सूक्तों को छोड़कर २००६ वर्ग हैं। इनकी समग्र मन्त्र संख्या १०४०२ है। ऋग्वेद में १५७ द्विपदा हैं, जिनमें से सत्रह नित्य द्विपदा हैं। अतः शेष १५७-१७=१४० एक सौ चालीस द्विपदा नैमित्तिक द्विपदा हैं। इन १४० नैमित्तिक द्विपदाओं को ७० चतुष्पदा बनाने पर ही ऋक् संख्या १०४०२ होती है। जब इन्हें चतुष्पदा न रखकर द्विपदा गिनेंगे तब सत्तर संख्या बढ़कर १०४०२+७०=१०४७२ दस हजार चार सौ बहत्तर हो जाती है। इस संख्या में ११ बालखिल्य सूक्तों के अस्सी मन्त्र जोड़ने पर मन्त्र संख्या १०४७२+८०=१०५५२ होती हैं। (द्र. महीदास, पृ. १७)

३. मन्त्र संख्या- १०५२२-यह संख्या प्रो. एफ. मैक्समूलर के संस्करण पर आधृत है। मैक्समूलर ने प्रथम मण्डल की साठ नैमित्तिक द्विपदाओं को ३० चतुष्पदा बनाकर प्रकाशित किया था। शेष ८० द्विपदा रूप में ही हैं। अतः १०५५२-३०=१०५२२ दस हजार पाँच सौ बावन में से तीस घटाने पर यह संख्या बनती है।

मैक्समूलर द्वारा साठ द्विपदा के चतुष्पदा बनाने (शेष अस्सी को द्विपदा ही रखने) का आधार चरणव्यूह अथवा शौनक की अनुवाकानुक्रमणी में उपलब्ध नहीं है।

४. मन्त्र संख्या- **१०४०२**- छन्दः संख्या के अनुसार ऋक्संख्या दस हजार चार सौ दो है। तद्यथा-

एवं दशसहस्त्राणि शतानान्तु चतुष्टयम्।
ऋचां द्व्यधिकमाख्यातमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।।

इस गणना में १४० नैमित्तिक द्विपदा को चतुष्पदा मानकर तथा अस्सी बालखिल्य ७०+८०=१५० को छोड़कर दिया गया है। यदि इन दोनों को सम्मिलित कर लें, तब मन्त्र संख्या १०५५२ हो जाती है।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस संख्या भेद का कारण मन्त्रों का न्यूनाधिक होना नहीं है। अपितु मन्त्रगणना प्रकार का वैभिन्न्य इसका कारण है। हाँ, मैक्समूलर द्वारा द्विपदाओं का आंशिक चतुष्पदा बनाना (एक सौ चालीस में से मात्र साठ को तीस चतुष्पदा बनाना) चिन्त्य है। सार्वदेशिक सभा द्वारा शौनक तथा चरणव्यूह के भाष्यकार महीदास की अपेक्षा मैक्समूलर का अनुसरण करना ही परोपकारिणी तथा सार्वदेशिक प्रकाशित ऋग्वेद की संख्या भेद का कारण है।

यजुर्वेद (वाजसनेय) संहिता में १९७५ मन्त्र हैं। सामवेद में १८७५ तथा अथर्ववेद (शौनक)में ५९७७ मन्त्र हैं।

१६ से ३१ अगस्त २०१८

संस्था समाचार

रक्षाबन्धन पर्व - इस अवसर पर २६ अगस्त को प्रातःकाल विशेष यज्ञ हुआ और उपस्थित सभी लोगों ने अपना पुराना यज्ञोपवीत उतारकर नया यज्ञोपवीत धारण किया। यज्ञ करवाने के पश्चात् श्री प्रभाकर जी ने इस पर्व के महत्त्व पर व्याख्यान दिया।

वृष्टि यज्ञ सम्पन्न - परोपकारिणी सभा एवं स्वामी हृदयाराम जी पुष्करराज द्वारा स्थापित जीव सेवा समिति द्वारा संयुक्त रूप से २६ जून २०१८ से वृष्टि यज्ञ का आयोजन किया गया था। यह यज्ञ २७ वर्षों से प्रतिवर्ष हो रहा है। ३१ अगस्त सायं चार बजे वृष्टि यज्ञ की पूर्णाहुति की गई। सभा मंत्री श्री ओममुनि ने जीव सेवा समिति के अधिकारियों, सदस्यों को श्रद्धापूर्वक यज्ञ की निरन्तरता बनाये रखने के लिये धन्यवाद दिया। पं. रामनिवास 'गुणग्राहक' ने यज्ञ के ब्रह्मा के रूप में सभी यजमानों को आशीर्वाद दिया। जीव सेवा समिति के यज्ञ संयोजक-संचालक श्री घनश्याम कुंकवानी एवं सभी सेवाधारियों ने अपने-अपने परिवार सहित आहुतियाँ प्रदान कीं। सायंकाल भोजन प्रसाद के पश्चात् कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

शोक समाचार - परोपकारिणी सभा के कार्यकर्त्ता श्री नौबतराम का ९४ वर्ष की आयु में २८ अगस्त को निधन हो गया। वे कुछ दिनों से चिकित्सालय में भर्ती थे। सभा की ओर से उनकी चिकित्सा एवं सेवा की पूर्ण व्यवस्था की गई थी। २९ अगस्त को ऋषि उद्यान यज्ञशाला में प्रातः यज्ञ के पश्चात् श्रद्धांजलि देते हुए मंत्री श्री ओममुनि ने उनके द्वारा सभा के लिये किये गये उनके कार्यों की प्रशंसा की।

जन्मदिवस पर यज्ञ- ऋषि उद्यान की भव्य यज्ञशाला में १८ अगस्त को श्री लक्ष्मण मुनि अपने सुपुत्र लखनऊ निवासी श्री रविशंकर के जन्मदिन पर अतिथि-यज्ञ के होता बने। २४ अगस्त को श्री वासुदेव आर्य एवं श्रीमती कुमुदिनी आर्य ने अपने सुपुत्र श्री अनुपम आर्य के जन्मदिन पर यज्ञ किया। २८ अगस्त को श्री सुरेन्द्र सिंह यादव के सुपुत्र श्री देवेन्द्र यादव अपने जन्मदिन पर अतिथि-यज्ञ के होता बने। परोपकारिणी सभा की ओर से अतिथि यज्ञ के इन होताओं और उनके परिवारों को जन्मदिवस की हार्दिक शुभकामनायें।

अतिथि- अजमेर नगर में केसरगंज स्थित ऐतिहासिक महर्षि दयानन्द आश्रम, वैदिक यन्त्रालय, अनुसन्धान भवन एवं वैदिक पुस्तकालय, ऋषि निर्वाण स्थल-भिनाय कोठी, अन्त्येष्टि स्थल-मलूसर, ऋषि उद्यान स्थित महर्षि दयानन्द सरस्वती संग्रहालय, महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल आदि महत्त्वपूर्ण स्थानों को देखने, संन्यासियों-विद्वानों से मिलकर शंका-समाधान करने, उपदेश ग्रहण करने, व्याकरण-दर्शन-वेद आदि शास्त्रों का अध्ययन करने, दैनिक यज्ञ एवं प्रवचन से लाभ लेने, पुष्कर आदि पर्यटन स्थलों में भ्रमण एवं आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार के लिए देश-विदेश के संन्यासी, वानप्रस्थी, विद्वान्, पुरोहित, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, आर्यवीर, आर्यवीरांगना, आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता, गृहस्थ स्त्री-पुरुष और बच्चे निरन्तर आते रहते हैं। सभी आगन्तुकों के निवास एवं नाश्ता, भोजन, दूध आदि की समुचित व्यवस्था ऋषि उद्यान में उपलब्ध रहती है। पिछले १५ दिनों में वाराणसी, जोधपुर, सवाई माधोपुर, दिल्ली, भीलवाड़ा, पानीपत, छोटी सादड़ी, अलीगढ़, कोटा, रेवाड़ी, चापानेरी, प्रतापगढ़, मैनपुरी, इन्दौर, किशनपुरा, हरिद्वार, जयपुर आदि स्थानों से ४५ अतिथि ऋषि उद्यान पधारे।

दैनिक प्रवचन-प्रातः कालीन सत्संग में श्री मुमुक्षु मुनि, श्री आनन्द मुनि, पं. रामनिवास 'गुणग्राहक' और श्री प्रभाकर के प्रवचन हुए। सायंकालीन सत्संग में श्री रमेश मुनि, श्री सुरेन्द्र, श्री प्रभाकर एवं पं. रामनिवास 'गुणग्राहक' के प्रवचन हुए।

१५ सितम्बर जिनकी पुण्यतिथि है...

काश कोई उन्हें भी याद रखता-२
(पं. नारायण प्रसाद बेताब)

प्रभाकर

परोपकारी के पिछले अंक सितम्बर द्वितीय में इस लेख का पहला हिस्सा आप पढ़ ही चुके होंगे। हाँ, तो हम कह रहे थे कि कलम के कलाकार बेताब साहब ने जब रंगमंच की दुनिया में कदम रखा तो वहाँ की हवाएँ बदल गईं। उर्दू नाटकों के उस दौर में बेताब साहब के नाटक 'महाभारत' ने हवाओं को हिन्दी नाटकों की ओर मोड़ दिया और इस कदर मोड़ा कि आगा हश्र कश्मीरी भी हिन्दू धर्म के प्रचारक बन गये। वह भी **बिल्वा मंगल**-भक्त सूरदास के जीवन पर और फिर **सीता-वनवास** जैसे नाटक लिखने लगे। ये नाटक बेताब और राधेश्याम कथावाचक के नाटकों की तरह ही खूब चले। इस एक **महाभारत** नाटक के बाद हिन्दी नाटकों की ऐसी बाढ़ आई कि मुस्लिम समाज के विरोधी स्वर सुनाई देने लगे। '**न्यू अलफ्रेड**' कम्पनी पर यह आरोप लगा कि यह तो हिन्दू कम्पनी बन गई है। कम्पनी तो कम्पनी ठहरी, उसे पैसा चाहिये था। लोगों का बैर नहीं। कम्पनी को जबरदस्ती एक उर्दू मुसलमानी नाटक लिखवाना पड़ा- '**मशरिकी हूर**' और उसे रंगमंच पर खेला भी गया। केवल नाटक लिखवाने से बात नहीं बनी, बल्कि नाटक की भाषा को भी गाढ़ी उर्दू का बाना पहनाया गया। इस नाटक को घोर सनातनी पं. राधेश्याम कथावाचक से लिखवाया गया था, पर जनाब नाटक की भाषा आग़ा हश्र को भी मात देती थी। नाटक के गीत की एक पंक्ति देखिये-

''ई रक्स-ए-महे खूबाँ, ई शीशा-ओ-पैमाना।''

यह सारा का सारा महाभारत 'महाभारत' ने ही खड़ा किया था। इस नाटक ने स्टेज पर आने के बाद जितना बवाल मचाया, उतना ही बवाल स्टेज से पहले भी मच चुका था। यह नाटक बेताब साहब ने ढाई से तीन साल में लिखा। खेलने की बारी आई तो कम्पनी मालिक काउस जी खटाऊ से किसी ने कह दिया कि 'महाभारत की कथा आबादी में नहीं की जाती, अशुभ फल होता है।' बेचारे नाटक के पैदा होने से पहले ही उस पर केस दर्ज हो गये। क्या करें? फिर अनुष्ठान आदि करके खटाऊ देव सन्तुष्ट हुए और नाटक का निष्क्रमण संस्कार करने की तैयारी हुई। २९ जनवरी १९१३ को पहली बार दिल्ली के संगम थियेटर में इसे खेला गया। नाटक की धूम तो मची ही, स्त्री समाज में यह इतना लोकप्रिय हुआ कि कम्पनी को हफ्ते के कुछ दिन तो केवल महिलाओं के लिये ही अलग से रखने पड़े।

वो अच्छा-अच्छा ही क्या जो बुरे पर चोट न करता हो। सच का आखिरी प्रमाण पत्र यही होता है कि झूठ उसका विरोध करे। यही 'महाभारत' के साथ हुआ। नाटक के एक दृश्य ने दर्शकों को दो हिस्सों में बाँट दिया-एक समर्थक, दूसरा विरोधी। विवादास्पद विषय था-चेता चमार का दृश्य। यह दृश्य लोगों को पाँच हजार साल पीछे महाभारत में खींच ले गया। बेताब लिखते हैं-''अब जनता का क्या दोष रहा। खेल समझें तो हँसी में उड़ा दें, जैसे औरों को उड़ा दिया था, परन्तु इसे हँसी में उड़ाना खेल नहीं था।''

बेताब के इन वाक्यों में किसी को कुछ भी दिखे, हमें तो विजय की भावना दिखाई दे रही है, कि जिसलिये दृश्य डाला गया था, वह अपना काम कर गया। पाठकों की उत्सुकता जाग ही रही होगी कि आखिर मामला था क्या? कुछ खास नहीं, बस यही कि शूद्र भी वेद पढ़ सकता है। बेताब के दिलो-दिमाग में दयानन्द के सिवाय और है ही कौन? एक दयानन्द ही तो है जो पानी की तरह ठहरे हुए समाज को गति दे सकता है ताकि वह फिर से चल पड़े और अपनी शुद्धता को फिर से प्राप्त करे। बेताब ने दयानन्द नाम के उसी पत्थर को उठाकर रुके हुए समाज में दे मारा। ऊपर की काई हटी और स्वच्छ जल दिखाई देने लगा। पर जिसकी रोजी-रोटी काई से ही चलती हो, उसे ये कैसे मन्जूर हो भला? खैर, दृश्य पर आते हैं-

चेता चमार एक भजन मण्डली चलाता है और साथ ही भगवान् की पूजा भी करता है। द्रोणाचार्य उससे पूछते हैं कि तुम्हें ठाकुर की पूजा करने की आज्ञा किसने दी?

चेता- महाराज! आप जैसे गुरुओं ने।

द्रोण- हम जैसे गुरुओं ने?

चेता- हाँ देवता! पानी स्रोतों के रास्ते कुएं में आता है। कुंए से घड़े में, घड़े से नहाने-धोने के काम में लिया जाता है तो वहाँ से बहकर मोरी के कीड़ों की प्यास भी बुझाता है।

द्रोण- इस उदाहरण का मतलब?

चेता- वेद, जो ईश्वर का ज्ञान है, **गुप्त रूप से ऋषियों के हृदय में आया**, ऋषियों ने मनुष्यों पर जहाँ-तहाँ उपदेश किया

तो मुझ जैसे नीच ने भी सुन लिया।

बात इतनी ही नहीं थी। आलम यह था कि बेताब साहब ने चेता चमार की टोली के झण्डे पर वेद मन्त्र भी लिख दिया। फिर क्या था, दकियानूसी लोगों के क्रोध की आग में घी डल गया। तो दुर्योधन ने चेता चमार से पूछा-

दुर्योधन- यह झण्डे पर क्या लिख छोड़ा है?

सेवा (चेता का शिष्य)-यथेमां वाचं कल्याणीम्

चेता-आवदानि जनेभ्य:...

द्रोण- चुप चाण्डाल, वेदमन्त्र इस मुँह से न निकाल।

दुर्योधन- छीन लो यह झण्डा।

द्रोण- धूर्तराज, क्या तुझे खबर नहीं कि तू जाति का चमार है। किसने कहा है कि शूद्रों को वेदमन्त्र पढ़ने का अधिकार है?

चेता- इसी वेदमन्त्र ने, इसमें परमात्मा मनुष्यमात्र को अपनी कल्याणकारी वाणी का अधिकारी बताता है। राजा, प्रजा, स्त्री, पुरुष, शूद्र, अतिशूद्र, सबको भजन-भक्ति में एक सा हक़दार ठहराता है।

यही वह सीन था जिसने अन्ध परम्परावादी समाज के मुंह पर तमाचा जड़ दिया था। वैसे इस घटना का महाभारत से कोई लेना-देना था नहीं, पर कलम दयानन्द के सिपाही के हाथ में थी तो बेताब को जो परोसना था, परोसा दिया। हालाँकि तथाकथित उच्च वर्ग के विरोध के बाद यह सीन नाटक से निकालना पड़ा, पर महाभारत नाटक के बाद के संस्करणों में इसे फिर से जोड़ दिया गया।

बेताब साहब के जीवन को पढ़ने से पता चलता है कि विवाद और बेताब की बड़ी पक्की यारी थी। विवाद, बेताब को छोड़ने का नाम ही नहीं लेता। बेताब साहब ने एक पुस्तक लिखी-'पद्य परीक्षा'। इसमें बड़े-बड़े धुरन्धर तत्कालीन कवियों की जमकर समीक्षा की गई और सबमें कुछ न कुछ कमी निकालकर कोने में कर दिया। अगर इस परीक्षा में कोई पास हुआ तो वे थे-महाकवि नाथूराम शर्मा 'शंकर'। ये वे ही नाथूराम शर्मा हैं, जिन्होंने अपने गीतों से दयानन्द का डंका बजवा दिया था। पर यह बात कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' को आहत कर गई। निराला ने इसी 'महाभारत नाटक' को उठाया और पूरे महाभारत को ही काव्य की दृष्टि से अयोग्य घोषित कर दिया। बेचारे महाभारत को कितना महाभारत लड़ना पड़ा, कितना तपा, तब जाकर कुन्दन बना। फिर बेताब साहब ने इस नाटक के अगले संस्करण में निराला की सभी आपत्तियों के उत्तर भी दे दिये।-इति महाभारत कथा।

शेष भाग अगले अंक में....

धौलपुर आर्य सत्याग्रह शताब्दी समारोह : एक झलक!

रामनिवास 'गुणग्राहक'

आर्यजगत् के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के इतिहासकार श्रद्धेय राजेन्द्र 'जिज्ञासु' जी आर्य, इतिहास की छोटी-बड़ी महत्त्वपूर्ण घटनाओं की ओर हम आर्यों का समय-समय पर ध्यान खींचते रहते हैं। आप महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा के वयोवृद्ध सदस्य हैं। सभा का गौरव बढ़ाने के पुण्य प्रयास आप डॉ. धर्मवीर जी के कार्यकाल से ही करते चले आ रहे हैं। **धौलपुर आर्य सत्याग्रह** का यह शताब्दी समारोह 'जिज्ञासु' जी के ऐसे ही प्रयासों की कड़ी की एक मणि है। आपने अपने **पं. लेखराम वैदिक मिशन** के युवा मानसपुत्रों को प्रेरणा की कि सन् १९१८ में धौलपुर के राजा उदयभानसिंह ने द्वेषवश धौलपुर, लाल बाजार स्थित आर्यसमाज को तोड़कर नष्ट कर दिया था। तब आर्यसमाज एक जीवित-जाग्रत और सशक्त संगठन था। आर्यों ने सत्याग्रह किया, स्वामी श्रद्धानन्द जैसे राष्ट्रीय स्तर के निर्भीक, निर्द्वन्द संन्यासी तथा महात्मा नारायण स्वामी जैसे तपोधन धौलपुर पहुँच जाएँ तो बड़े-बड़े राजसिंहासन डोलने लगते हैं। इन महामानवों ने आर्यों के मन-मस्तिष्क में ऐसी उमंग-तरंग भर दी कि धौलपुर नरेश को झुकना पड़ा। ऐसे सफल आर्य सत्याग्रह का यह शताब्दी वर्ष है, भरतपुर-धौलपुर की क्षेत्रीय जनता में पुराने आर्य-गौरव को पुनर्जीवित करने के लिए सत्याग्रह की शताब्दी मनाना चाहिए। जिज्ञासु जी की लौह लेखनी और वीरोचित वाणी का अपना निराला ही प्रभाव है। उनकी प्रेरणा पाकर हमने (लक्ष्मण जिज्ञासु और मैं) योजनाबद्ध कार्य प्रारम्भ कर दिया। भरतपुर की माटी से बना हमारा रक्त भरतपुर के आर्यों के लिए शूरता की शान स्वामी श्रद्धानन्द का सिंहनाद लेकर मचल उठा।

श्रद्धेय राजेन्द्र 'जिज्ञासु' जी का आदेश था कि इस

आर्य सत्याग्रह शताब्दी समारोह का पहला कार्यक्रम भरतपुर में हो और दूसरा धौलपुर में। भरतपुर की जिला सभा का वार्षिक उत्सव १२-१३ व १४ जून को था, क्षेत्रीय आर्य जनता तक सूचना पहुँचाने का अच्छा अवसर पाकर मैं वहाँ गया। सभा प्रधान श्री ओम्प्रकाश जी आर्य एवं मन्त्री श्री सत्यदेव जी आर्य से चर्चा करके मैंने दोपहर की सभा में सबको यह सूचना कर दी कि १८ अगस्त को धौलपुर आर्य सत्याग्रह समारोह का शुभारम्भ भरतपुर से होगा और १९ अगस्त को धौलपुर में समापन। भविष्य में चर्चा के लिए क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण आर्य सज्जनों के सम्पर्क सूत्र (मोबाइल नम्बर) भी ले आया। इसी प्रकार धौलपुर के आर्यों से सम्पर्क करके २१ जुलाई को मैं व लक्ष्मण जिज्ञासु धौलपुर गए। धौलपुर के श्री लाजपति जी आर्य व श्री वेदमुनि जी ने जिले की सब समाजों के प्रतिनिधियों को बुलाकर से बैठक की व्यवस्था की। कार्यक्रम की रूपरेखा तय हो गई तो धौलपुर की तहसील बाड़ी की सक्रिय आर्यसमाज के अधिकारियों ने निवेदन किया कि अगर सम्भव हो तो २१ अगस्त को एक कार्यक्रम बाड़ी में भी कर दो। हमने श्रद्धेय जिज्ञासु जी, माता ज्योत्स्ना धर्मवीर और डॉ. वेदपाल जी की स्वीकृति लेकर बाड़ीवालों को हाँ कर दी। बाड़ी के श्री राकेश आर्य जी का सम्पर्क सूत्र भी लिया। इस प्रकार इस ऐतिहासिक कार्यक्रम की पृष्ठभूमि तैयार करके हम दोनों सायंकाल धौलपुर से दिल्ली-श्रीगंगानगर लौट आये।

इस ऐतिहासिक कार्यक्रम के लिए धौलपुर आर्य सत्याग्रह शताब्दी समारोह समिति बनाई जिसमें श्रद्धेय राजेन्द्र 'जिज्ञासु', श्रद्धेय डॉ. वेदपाल जी, परोपकारिणी सभा के मन्त्री ओम्मुनि जी, माता ज्योत्स्ना धर्मवीर जी के संरक्षण में समिति के अध्यक्ष आचार्य ओम्प्रकाश जी गुरुकुल आबू पर्वत, मन्त्री रामनिवास 'गुणग्राहक' और कोषाध्यक्ष पं. लक्ष्मण 'जिज्ञासु' को बनाया गया। सदस्यों में श्री गौरव आर्य जोधपुर तथा जिला सभा भरतपुर व धौलपुर से तीन-तीन सदस्य लिये गए। पं. लेखराम वैदिक मिशन के श्री लक्ष्मण 'जिज्ञासु' एवं श्री गौरव आर्य जोधपुर ने इस सम्पूर्ण कार्यक्रम में प्रारम्भ से अन्त तक नींव की ईंट जैसा आधारभूत योगदान दिया। श्री राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने धौलपुर सत्याग्रह की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को लेकर एक पुस्तक 'अखण्ड संग्राम' लिखी। कार्यक्रम की तैयारियों को लेकर सब अपने-अपने क्षेत्र में जुट गए।

शेष भाग अगले अंक में....

परोपकारी के पाठकों से निवेदन

प्रिय पाठकगण, सादर नमस्ते!

आप जैसे सहृदय पाठकों से निवेदन है कि आपकी प्रिय पत्रिका हम आपकी सेवा में निरन्तर प्रेषित कर रहे हैं ताकि युगनिर्माता महर्षि दयानन्द सरस्वती के लोकोपकारी एवं धार्मिक सन्देश जन-जन तक पहुँच सकें तथा उन कल्याणकारी विचारों को पढ़कर प्रत्येक पाठक सदाचारी, धर्मप्रेमी एवं वैदिक विचारधारा का अनुयायी बनकर वर्तमान में प्रचलित पाखण्ड, अन्धविश्वास को छोड़कर बुद्धिजीवी, तार्किक एवं सत्यान्वेषी बनकर समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुसंस्कारों से मुक्त रहे।

सज्जनो, हम इस पत्रिका की लाभ-हानि की बात नहीं कर रहे। इस निवेदन में केवल इतना जान लें कि पैसा भी किसी संस्था के प्रचार के लिए आवश्यक है। बहुत से महानुभावों का वार्षिक शुल्क हमें निरन्तर प्राप्त हो रहा है, परन्तु कुछ सदस्यों का शुल्क आता ही नहीं है, वर्षों तक रुका रहता है, पुनरपि उन्हें पत्रिका भेजी ही जाती है। अतः ऐसे सज्जनों से निवेदन है कि परोपकारिणी सभा के बैंक खाते में सदस्यता की रकम जमा कराकर इस पावन पत्रिका के निरन्तर प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देकर इस धर्म के स्रोत को जारी रखने की कृपा करें।

आशा है आप महानुभाव वार्षिक शुल्क भिजवाकर हमारा उत्साह निरन्तर बढ़ाते रहेंगे।